ॐ नमः श्री राम लाल प्रभु जी परब्रह्मणे नमः

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज

चरितामृत

श्री योग महादिव्य रामायण

ग्यारहवां खण्ड - अध्यात्म काण्ड

श्रीमद्भगवद्गीता

दिव्य योग शास्त्र

लेखक :-

चमन लाल कपूर 'सेवक'

प्रकाशक :-

योग साधन आश्रम, 3 - एल, माडल टाऊन,

होशियारपुर (पंजाब)

ॐ नमः श्री राम लाल प्रभु जी परब्रह्मणे नमः

श्री 1008 योगेश्वर प्रभु रामलाल जी महाराज
चरितामृत

श्री योग महादिव्य रामायण
ग्यारहवां खण्ड - अध्यात्म काण्ड

श्रीमद्भगवद्गीता
दिव्य योग शास्त्र

लेखक :-

चमन लाल कपूर 'सेवक'

प्रकाशक :-

योग साधन आश्रम, 3 - एल, माडल टाऊन,
होशियारपुर (पंजाब)

प्रथम बार 1000
योगेश्वर राम लालाब्द 117
विक्रम संवत् 2062
व्यास पूजा जुलाई, 2006

भेंट :- रु. 150/-

योग वन्दना

योग – विद्यां नमाम्यहम्

सौंदर्य लहरीरूपां, तापत्रयविनाशनीम् ।
तेजस्विनीं तपोरूपां, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।१।।
संस्थापिकां समत्वं तां, शक्तिसृजनकारिणीम् ।
चित्तवृत्तिनिरोधाय, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।२।।
अर्धनारीश्वरस्येमां, चैतन्यसार संभवाम्।
पूर्णरूपकुण्डलिनीं, योगविद्यां नमाम्यहम् ।।३।।

●●●●

※ योग तुझे नमस्कार ※

सुन्दर करे जो देह को, करे दु:खों से पार ।
तेज रूप तप रूप जो, योग तुझे नमस्कार ।।१।।
करे समत्व दान जो, शक्ति सिरजनहार ।
चित्तावृत्ति निरोधहित, योग तुझे नमस्कार ।।२।।
आदिनाथ से ऊपजा, चेतनता का सार ।
जागृत कुण्डली जो करे, योग तुझे नमस्कार ।।३।।
राम लाल जिस का किया, कलियुग में उद्धार ।
मुलखराज के ''सेवक'', का तुझे नमस्कार ।।४।।

चमन लाल कपूर ''सेवक''

ॐ नमः श्री रामलाल प्रभु जी परव्रह्मणे नमः

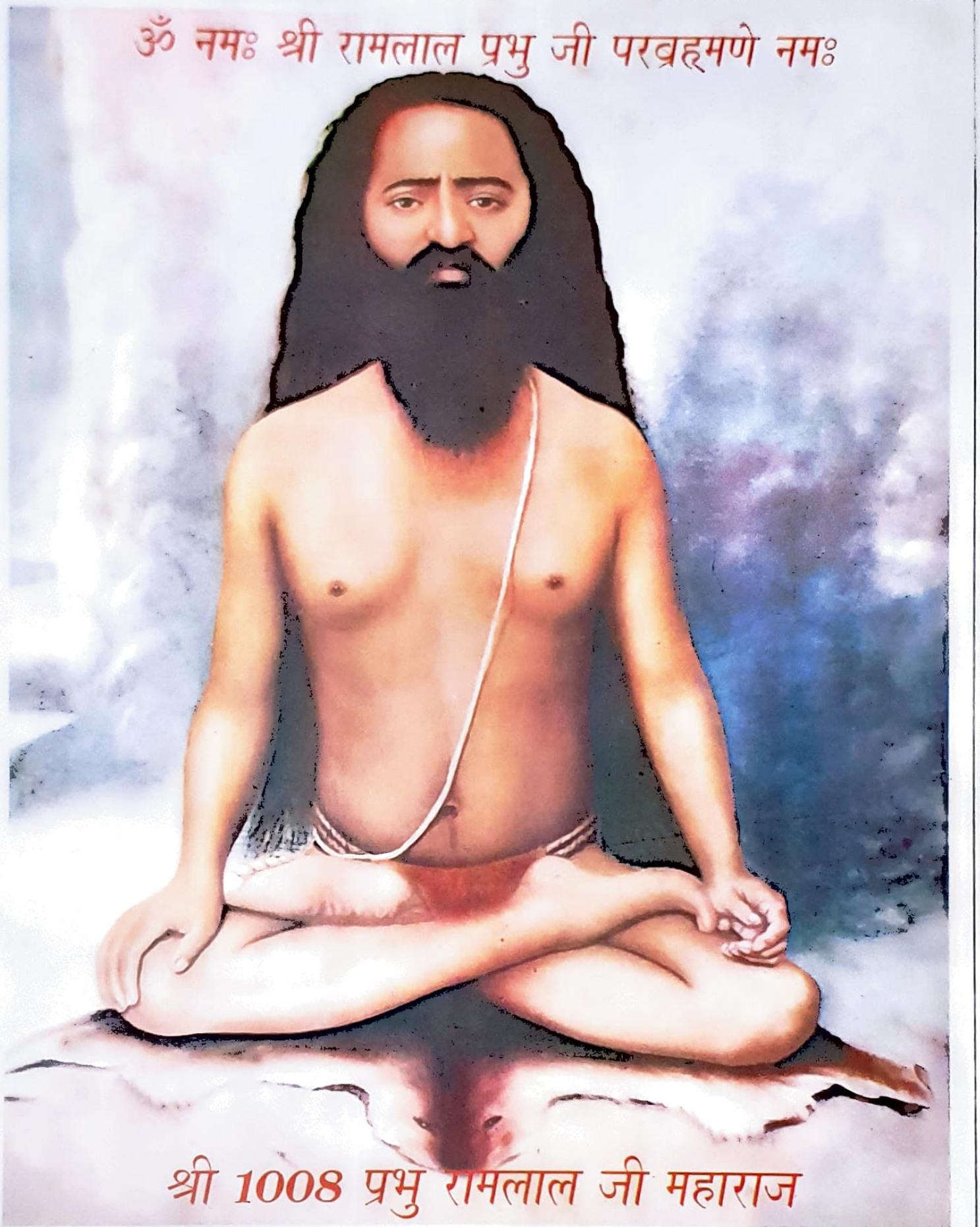

श्री 1008 प्रभु रामलाल जी महाराज

श्री योग महादिव्य रामायण अध्यात्म काण्ड

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र

विषय सूची

क्रम सं.	प्रसंग	पृष्ठ सं.
	पद्य भाग	
1.	दो शब्द	iii
2.	प्रस्तावना	iv
3.	श्रीमद्भगवद्गीता के अठारह अध्यायों का अवलोकन	v
4.	प्राक्कथन - पूर्व विचार	ix
5.	प्रथम अध्याय - विषाद योग	1
6.	दूसरा अध्याय - सांख्य योग	6
7.	तीसरा अध्याय - कर्म योग्	13
8.	चौथा अध्याय - ज्ञान कर्म सन्यास योग	19
9.	पांचवां अध्याय - कर्म सन्यास योग	24
10.	छठा अध्याय - आत्म संयम योग	28
11.	सप्तम अध्याय - ज्ञान विज्ञान योग	37
12.	आठवां अध्याय - अक्षर ब्रह्म योग	42
13.	नवम अध्याय - राज विद्या-राज गुह्य योग	47
14.	दशम अध्याय - विभूति योग	59
15.	ग्यारहवां अध्याय - विश्वरूप दर्शन योग	65
16.	बारहवां अध्याय - भक्ति योग	75
17.	तेरहवां अध्याय - क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग	83
18.	चौदहवां अध्याय - गुणत्रय विभाग योग	90
19.	पंदरहवां अध्याय - पुरुषोत्तम योग	95

विषय सूची

क्रम सं.	प्रसंग	पृष्ठ सं.
20.	सोलहवां अध्याय - दैवासुर संपद्विभाग योग	100
21.	सतरहवां अध्याय - श्रद्धात्रय विभाग योग	107
22.	अठारहवां अध्याय - मोक्ष सन्यास योग	112
	गद्य भाग	
23.	पूर्व परिचय	125
24.	प्रथम अध्याय - विषाद योग	129
25.	दूसरा अध्याय - सांख्य योग	133
26.	तीसरा अध्याय - कर्म योग्	138
27.	चौथा अध्याय - ज्ञान कर्म सन्यास योग	143
28.	पांचवां अध्याय - कर्म सन्यास योग	147
29.	छठा अध्याय - आत्म संयम योग	153
30.	सप्तम अध्याय - ज्ञान विज्ञान योग	161
31.	आठवां अध्याय - अक्षर ब्रह्म योग	166
32.	नवम अध्याय - राज विद्या-राज गुह्य योग	171
33.	दशम अध्याय - विभूति योग	177
34.	ग्यारहवां अध्याय - विश्वरूप दर्शन योग	182
35.	बारहवां अध्याय - भक्ति योग	188
36.	तेरहवां अध्याय - क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग	192
37.	चौदहवां अध्याय - गुणत्रय विभाग योग	198
38.	पंदरहवां अध्याय - पुरुषोत्तम योग	202
39.	सोलहवां अध्याय - दैवासुर संपद्विभाग योग	207
40.	सतरहवां अध्याय - श्रद्धात्रय विभाग योग	212
41.	अठारहवां अध्याय - मोक्ष सन्यास योग	218

दो शब्द

श्री सदुरुदेव स्वामी मुलखराज जी महाराज की असीम कृपा से और योगेश्वर श्री प्रभु रामलाल जी महाराज की दिव्य दया से ''श्री योग महादिव्य रामायण'' का ग्यारहवां खण्ड 'श्रीमद्भगवद्गीता-दिव्य योग शास्त्र' के रूप में मुद्रित होकर प्रभु प्रेमी जनता के समक्ष आ रहा है। सहृदय पाठकों के लिये श्रीमद्भगवद्गीता गद्य और पद्य दो रूपों में प्रस्तुत है।

आशा है 'सेवक' के इस प्रयास का स्वाध्यायप्रेमी महानुभाव अनुमोदन करेंगे और लाभ उठायेंगे।

चमनलाल कपूर
'सेवक'

प्रस्तावना

श्रीमद्भगवद्गीता विश्वप्रसिद्ध ग्रंथ है और इसके विषय में विद्वानों की सम्मति है

गीता सुगीता कर्तव्या,
किमन्य शास्त्रविस्तरैः।
या स्वयं पद्मनाभस्य,
मुखपद्मान्निसृता ॥

अर्थात् (भाव)

गीता का भली प्रकार से स्वाध्याय करना चाहिए। ऐसा करने से फिर अन्य शास्त्रों के पढ़ने की आवश्यकता नहीं रहती, क्योंकि गीता भगवान विष्णु (कृष्ण) के मुख कमल से उच्चरित हुई है।

तात्पर्य, गीता में सभी शास्त्रों का सार निहित है।

गीता के रचयिता महर्षि व्यास थे। वे वेदों की ऋचाओं के संग्रह कर्त्ता, अठारह पुराणों के कर्त्ता और महाभारत के लेखक थे। वे सर्वश्रेष्ठ योगी भी थे। उनकी रची हुई गीता के प्रत्येक शब्द और श्लोक में गूढ़ रहस्य (भाव) हैं जो सर्वसाधारण की प्रज्ञा से प्रायः ऊपर है। अतः गीता के पढ़ने की रुचि कम होती दिखलाई देती है।

प्रस्तुत ग्रंथ में श्रीमद्भगवद्गीता के दुरूह भावों के स्पष्टीकरण का भी प्रयास किया गया है।

आशा है सहृदय पाठक इस ग्रंथ से कुछ लाभ उठा सकेंगे।

दिनांक 10.10.2005

चमनलाल कपूर
'सेवक'

श्रीमद्भगवद्गीता के अठारह अध्यायों का अवलोकन

द्वापर युग में श्रीकृष्ण चन्द्र का अवतार लेना और श्रीमद्भगवद्गीता के माध्यम से 'योग शास्त्र उपनिषद्' का उपदेश संसार को देना उस युग की परम उपलब्धि है। विद्वानों का मत है कि इस जैसा ज्ञान संसार में अन्यत्र नहीं। गीता शास्त्र के इस महत्व को देख निम्नलिखित पंक्तियों में उस के सभी अठारह अध्यायों का सिंहावलोकन कर रहे हैं जो इस प्रकार से हैं:-

श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार जीवन का ध्येय मोक्ष है। (देखें गीता का अन्तिम अठारहवां अध्याय 'मोक्ष सन्यास योग')। मोक्ष साधन का आरंभ 'वैराग्य' से होता है अर्थात् सांसारिक कर्मों से ग्लानि। (देखें गीता का प्रथम अध्याय 'विषाद योग')।

संसार असत्य है तो उस से ग्लानि होने पर सत्य की खोज आवश्यक है। (देखें गीता का दूसरा अध्याय 'सांख्य ज्ञान योग')। इस के लिए जन अन्तर्मुख हो जाए।

मनुष्य हर समय अन्तर्मुखी नहीं रह सकता। उसे शरीर के लिए कर्म भी करने होते हैं। (देखें तीसरा अध्याय 'कर्म योग')। कर्म के साथ उन का फल भी संलग्न है।

कर्म में प्रवृत्त होने पर यह शंका होती है कि कहीं मन का वैराग्य खण्डित न हो जाए क्योंकि हर कर्म के साथ फल लगा रहता है। अत: वैराग्य - ज्ञान - कर्म तीनों इकट्ठे होने चाहिएं। (देखें गीता का चौथा अध्याय 'ज्ञान-कर्म-सन्यास योग') अर्थात् फल की इच्छा त्याग ज्ञान पूर्वक कर्म करना। इस अवस्था को विदेह अवस्था जानो, जो राजा जनक की थी। इस कारण वह 'विदेह' नाम से प्रसिद्ध है।

विदेह का जन्म फिर योगियों के घर होता है जहाँ पर उसको योग में और अधिक प्रवृत्ति होती है। गीता का लक्ष्य मोक्ष है। अत: जीव जन्म मरण से छूटना चाहता है। परन्तु कर्म भी करना पड़ता है। इसका समाधान गीता के पांचवें अध्याय ('कर्म सन्यास योग') में है जिसके अनुसार योगी देखता है कि कर्म आत्मा नहीं करती, इन्द्रियाँ करती हैं। आत्मा निर्लेप है। आत्मा और कर्म के सबन्ध विच्छेद का नाम 'कर्म सन्यास' है। इस अवस्था का नाम 'प्रकृति-लय' अवस्था है जो अवतारी आत्माओं की होती है।

परन्तु साधारण व्यक्ति प्रकृति लय अवस्था में नहीं पहुँच सकता। यहाँ तक पहुँचने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता है उन्हें देखें गीता के छटे अध्याय ('आत्म संयम योग') में।

संयम शरीर से करना होता है जो आत्मा से भिन्न है। अत: आत्मा और शरीर दोनों के बारे में जानकारी होनी आवश्यक है। आत्मा को जानना 'ज्ञान' है और शरीर को जानना 'विज्ञान' है । इसे जानने के लिए गीता का सातवां अध्याय ('ज्ञान विज्ञान योग') है।

संयमी मनुष्य की आत्मा मुक्ति प्राप्त करती है। उसे ब्रह्म में लीन होना होता है। इसके लिए देखें गीता का आठवां अध्याय ('अक्षर-ब्रह्म योग')।

उस अक्षर ब्रह्म के स्वरूप का वर्णन कोई नहीं कर सकता। जो उसे प्राप्त कर लेता है वह उस में समा जाता है और लौटता नहीं। 'अक्षर ब्रह्म योग' की साधना जन साधारण के लिए सम्भव नहीं। क्या मुक्ति का कोई सरल मार्ग नहीं? वह है गीता का नवम अध्याय ('राज विद्या-गुह्य विद्या योग')। इसमें पाँच प्रकार के अभ्यास हैं जो सभी कर सकते हैं। वे निम्नलिखित हैं:-

राज विद्या योग –

1. ईश्वर की सर्वव्यापकता देखना (गीता 9.6)
2. भक्ति में नित्य युक्त रहना (गीता 9.14, 22)
3. सकाम भक्ति न करना (गीता 9.20, 21)
4. सर्व कर्म ईश्वर अर्पित करने (गीता 9.26, 27)
5. अनन्य भक्त होना (गीता 9.30,32,34)

इस योग का नाम 'राज गुह्य' इस कारण है क्योंकि इस की अधिक चर्चा से यह पाखंड मार्ग भी हो जाता है।

कठिनाई यह है कि ईश्वर को सर्वव्यापक देखते रहने से मन स्थिर नहीं हो पाता। मन ईश्वर में स्थिर रहे इसके लिए देखें गीता का दसवां अध्याय ('विभूति योग') जिस द्वारा जगत में सर्वत्र मिलने वाली ईश्वर की विभूतियों में से किसी एक पर चित्त स्थिर हो सकता है।

अनन्य भक्त की तुष्टि विभूतियों को देखने से नहीं हो पाती। वह ईश्वर के साक्षात दर्शन करना चाहता है। इसके लिए देखें गीता का ग्यारहवां अध्याय ('विश्वरूप दर्शन')।

विश्वरूप दर्शन गुरु की कृपा और 'शक्तिपात' से सम्भव है जैसा कि श्री कृष्ण ने अर्जुन को अपनी शक्ति से युद्ध भूमि में विराट स्वरूप के दर्शन करवाये। इस कृपा को प्राप्त करने के लिए देखें गीता का बारहवां अध्याय ('भक्ति योग')। इस भक्ति के प्रभाव से भक्त ईश्वर को जान सकता है, देख सकता है और उस में प्रवेश भी कर सकता है। (गीता 11.53)

ऐसी अनन्य भक्ति किस प्रकार सम्भव है? इसके लिए देखें गीता का तेरहवां अध्याय ('क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग')। क्षेत्रज्ञ (आत्मा) तथा क्षेत्र (शरीर) के सम्बन्ध का ज्ञान और इन के सम्बन्ध विच्छेद की साधना।

शरीर और आत्मा के बन्धन का कारण क्या है? इसके लिए देखें गीता

का चौदहवां अध्याय ('गुणत्रय विभाग योग') और जानें कि किस रीति से आत्मा उस बन्धन से छूट सकती है और आत्म दर्शन हो सकता है।

आत्मा या ईश्वर जिसे देखना है उस का स्वरूप क्या है? उस के लिए देखें गीता का पंद्रहवां अध्याय ('पुरुषोत्तम योग') तथा उसे देखने के लिए जो साधन चाहिएं वे क्या हैं?

ईश्वर दर्शन के लिए भक्त में कौन कौन से गुण होने चाहिए उसके लिए देखें गीता का सोलहवां अध्याय ('दैवासुर संपद् विभाग योग')।

दैवी गुण को प्राप्त करने के लिए मन में जो श्रद्धा होनी चाहिए, वह क्या है? इसके लिए देखें गीता का सतारहवां अध्याय ('श्रद्धात्रय विभाग योग')।

भक्ति और श्रद्धा का फल क्या होगा? उसके लिए देखें गीता का अन्तिम अठारहवां अध्याय ('मोक्ष सन्यास योग')। जब भक्त मोक्ष की कामना से भी मुक्त हो जाता है तब वह 'पूर्ण काम' हो जाता है।

-इति-

प्राक्कथन -पूर्व विचार

काशी से इक पण्डित आया, योगेश्वर राम से मिल पाया।
ऋषिकेश आश्रम में थे राम, आकर पण्डित कीन प्रणाम।
राम ने आसन उस को दीना, उस का कुशलक्षेम पुछ लीना।
कहा पण्डित ''योगेश्वर राम, श्रवण किया है बहु तव नाम।
लांबी यात्रा कर मैं आया, संग जिज्ञासा इक हूँ लाया।
द्वापर युग जो गीता गायी, अर्जुन को थी कृष्ण सुनायी।
विविध भाष्य उस के हम पावें, देख सबन को हम चकरावें।
कृष्ण योगेश्वर आप योगेश, कथन करें जो भाव विशेष।

दो०- गीता जो श्री कृष्ण की, सब शास्त्रों का सार।
सुनना चाहूँ आप से, उस गीता का सार''॥7886

कहा प्रभु ''हे विप्र प्यारे, तुमने शास्त्र पढ़े हैं सारे।
[1]योग के ग्रंथ सभी तुम देखे, दर्शन भी हैं तुमने पेखे।
गीता भी है योग का शास्त्र, मुनि व्यास था लिखा यह शास्त्र।
उपनिषद् रूप में हि लिख पाया, कृष्णार्जुन संवाद है आया।
योग के जो अंग हैं न्यारे, सार रूप गीता में सारे।
राजयोग विशेष कर आया, योग पातांजल पूर्ण समाया।
यम नियमों का संपूर्ण ज्ञान, ईश्वर भक्ति मुख्य पहचान''।

दो०- सुनी प्रभु की बात जब, पण्डित मन हैरान।
बोल उठा ''हे योगिवर, यह तो नूतन ज्ञान''॥7887

---

1. योग के ग्रंथ - शिव संहिता आदि दर्शन - सांख्य, न्याय, योग आदि।

पातांजल योग यहां समाया, कहीं किसी ने नहीं कह पाया।
आप करिये यह बात स्पष्ट, भ्रांति मेरी जिमि होवे नष्ट''।
कहा राम ''मैं सब बतलाऊँ, आगे प्रसंग वश कथ पाऊँ।
अठारह गीता के अध्याय, क्रमपूर्वक हैं लिख वे पाये।
उसी क्रम से यह होय स्पष्ट, अन्यथा भ्रांति न होवे नष्ट।
सब अध्यायों के नाम विशेष, उन से बाहिर न रहत कुछ लेश।
व्यास ने जो नाम रख पाये, उन से विषय स्पष्ट हो जाये।
सब नामों में योग है आया, अठारह बार ''योग'' कथ पाया।

दो०- [1]अठदश अध्याय योग के, व्यास रचे जो मीत।
विलक्षण शास्त्र योग का, वह है भगवद्गीत॥7888

अठदश योग के रूप बताये, मिलें सभी तो योग हो जाये।
उन सबन के नाम कथ पाऊँ, अपनी वाणी शुद्ध कर पाऊँ।
'विषाद योग' पहला अध्याय, दूजा 'सांख्य योग' कहलाय।
तीजा 'कर्म योग' लो जान, 'ज्ञान कर्म सन्यास' फिर मान।
पंचम 'योग कर्म सन्यास', 'आत्मसंयम' है छटा खास।
'ज्ञान विज्ञान' सप्तम भाई, अष्टम 'अक्षर ब्रह्म' कहाई।

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता के अठारह योग अध्याय :-
   1. विषाद योग
   2. सांख्य योग
   3. कर्म योग
   4. ज्ञान कर्म सन्यास योग
   5. कर्म सन्यास योग
   6. आत्म संयम योग
   7. ज्ञान विज्ञान योग
   8. अक्षर ब्रह्म योग
   9. राज विद्या राजगुह्य योग
   10. विभूति योग
   11. विश्व रूप दर्शन योग
   12. भक्ति योग
   13 क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ विभाग योग
   14 गुण त्रय विभाग योग
   15. पुरुषोत्तम योग
   16. दैवासुरसंपद् योग
   17. श्रद्धात्रय विभाग योग
   18. मोक्ष-सन्यास योग

'राज विद्या राजगुह्य' हि जान, नवम योग लो इसे पहचान।
दशम 'विभूति योग' कहलाय, 'विश्वरूप दर्शन' एकादश आय।
'भक्ति योग' बारहवां योग, 'क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग' भी योग।
'गुणत्रय विभाग' योग कहाय, 'पुरुषोत्तम योग' पंदरहवां आय।
'दैवासुर संपद्' जो विभाग, योग का सोलवां है यह भाग।

दो०- दो विभाग योग के, जो अन्तिम हैं मीत।
''श्रद्धात्रय विभाग'' को, लो सत्रवां चीत॥7889

''मोक्ष सन्यास'' अठारवां, इस विध सब अध्याय।
गीता ग्रंथ योग का, भ्रांति नहीं रह पाय''॥7890

सारगर्भित सुन प्रभु की वाणी, गीता की असलीयत जानी।
भिन्न विचार जो थे सुन पाये, अप्रासंगिक सभी लखाये।
पण्डित बोला ''योगिवर नाथ, नूतन ज्ञान लगा मम हाथ।
मेरी विनय अब हे महाराज, गीता संपूर्ण पढ़ावें आज''।
सुनी प्रभु पण्डित की बात, कहने लगे ''हे सुन मम तात।
गीता में रहस्य अनेक, मैं कथूँ कुछ उन में एक।
युद्ध मध्य जो गीता गायी, शिक्षा जग को है मिल पायी।
संसार भी तो इक संग्राम, शिक्षा लेवें मनुष्य तमाम।
एक बात और चित्त आई, गीता में जो है मिल पाई।
दूर बैठे सञ्जय देखा, युद्ध का दृश्य सारा पेखा।
दूर बैठे वह था सुन पाया, अर्जुन को जो कृष्ण सुनाया।
कुशाग्र बुद्धि व्यास की जानो, ''विभूति योग'' ज्ञान पहचानो।

[1] प्रमाण देय व्यास बताया, पतंजलि ने जो था लिख पाया।

दो०- एक बात सुन और भी, पण्डित वर मम मीत।
धृतराष्ट्र भी सुनत रहा, गीता को ला चीत॥7891

उस को शांति न मिली, सुन गीता का ज्ञान।
इस में क्या रहस्य हो, हे पण्डितवर विद्वान॥7892

विचार आप के हम सुन पायें, फिर हम गीता को पढ़ पायें''।
कहा पण्डित ''हे योगिराज, सुनूँ मैं आप से ही यह आज।
यह प्रश्न मम मन भी आया, संकोच वश न पूछ था पाया।
उत्तर इस का जो बतलायें, वेद वचन सम्मान वह पायें।
उत्तर इस का जो मिल पावे, वेद वचन सम मुझे लखावे''।
राम कहा ''हे विप्र प्यारे, काम क्रोध मोह शत्रु भारे।
इन से मन जब हो आक्रांत, किसी विधि न होत वह शांत।
मोहासक्त जन अंधा होये, ज्ञान की बात न उस को सोहे।
धृतराष्ट्र की दशा थी ऐसी, संतति मोह में होती जैसी।
ज्ञान भी अज्ञान लग पावे, मोह ग्रस्त को न कुछ भावे।
पण्डित वर है क्या यह ठीक, अथवा यह तुझे लगे अलीक''।
कहा पण्डित ''हे योगिराज, विशेष ज्ञान मिला है आज।
काशी में न जो सुन पाया, वह ज्ञान मुझे आप सुनाया।
मेरी इच्छा है अब नाथ, पढ़ूं गीता रह आप के साथ''।
जानी पण्डित की जिज्ञासा, प्रभु बोले ला मुख पै हासा।
''पण्डित वर जब गीता गायें, लेश भूल न कभी भी पायें।

1. देखें पतंजलिकृत योग दर्शन - ''विभूति पाद''

[1] योग का शास्त्र गीता भाई, बात स्वयं व्यास लिख पाई।
एक बात अब और लो जान, योग आरंभ वैराग्य से मान।

दो०- योग शास्त्र आरंभ हो, वैराग्य से हि मीत।
चाहे 'दर्शन योग' का, 'योग वासिष्ठ' व चीत॥7893

परिभाषा वैराग्य की, देखेंगे हम मीत।
गीता के अध्याय में, जो प्रथम है चीत॥7894

धीरे धीरे पढ़ हम पायें, गीता शास्त्र विचार में लायें''।

-इति-

पूर्व विचार

1. देखें गीता के प्रत्येक अध्याय की समाप्ति पर ''योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे आदि''

श्री दिव्य रामायण सहगान

दिव्य रामायण की गाथा को,
जो नर सुने सुनावे ।
जीवन में रहे सुखी हमेशा,
अंत परमपद पावे ।।
श्री प्रभु गंडाराम दुलारे,
इस में उन के खेल हैं न्यारे ।
पतित पावनी कथा मनोहर,
भक्तन के मन भावे ।।
सुन्दर यह इतिहास मनोहर,
लीला कीनी जिमि योगेश्वर ।
योग साधना की पावस ऋतु,
योगामृत बरसावे ।।
उत्तम नीति इस में आई,
भक्त जनों के जो मन भाई ।
इस के सुनने से प्राणी का,
पाप नाश हो जावे ।।
श्री प्रभु राम लाल हैं नायक,
जीव चराचर के सुखदायक ।
उन के चरण कमल का भौंरा,
'सेवक' शीश झुकावे

ॐ

श्रीमद्भगवद्गीता

प्रथम अध्याय

'विषाद योग[1]'

दो०- कुरुक्षेत्र मैदान में, आ डटीं थीं सैन।
पांडव एक ओर थे, दूजी कौरव सैन॥7895

अर्जुन के वहां रथ में, बैठा कृष्ण मुरार।
बन अर्जुन का सारथी, दिव्य संयोग अपार॥7896

कहा अर्जुन ने मित्रवर, दो सेनाओं के बीच।
स्थित करो मेरे रथ को, देखूँ सकल समीच॥7897

कृष्ण ने तब कर वह पाया, सेनाओं मध्य रथ ठहराया।
देखा अर्जुन ने चहूँ ओर, अपने संबंधि थे सब ठोर।
कहा अर्जुन मैं न लड़ पाऊँ, स्वजनों पर नहीं तीर चलाऊँ।
ऐसा कह धनुष को छोड़, बैठ गया रथ में इक ओर।
सुन पण्डित प्रभु की वाणी, मन उसने इक शंका लानी।
और बोला ''हे योगिराज, परमवीर को हुआ क्या आज।

1. विषाद - खिन्नता, उदासी, उत्साहहीनता, Depression

इतिहास मध्य कहीं न आया, युद्ध में अर्जुन हो घबराया।
रहस्य की हो यदि यहां कुछ बात, सुनना चाहूँ आप से तात''।
बोले प्रभु ''हे विप्र सुजान, तुम्हारी बात में गुप्त ज्ञान।
जीव संस्कारी जब जग आये, लक्ष्य न अपना भूल वह पाये।
ज्ञान पुरातन उदय हो जाये, उस के मन 'विषाद' छा जाये।
युद्ध भूमि में जो दिख पाया, अर्जुन मन विषाद उपजाया।
युद्ध से हुआ था वह उपराम, कर्म व्यर्थ उसे लगें तमाम।

दो०- अर्जुन ने स्वविषाद में, जो कहा बतलाऊँ।
नहीं लड़ूं मैं भीष्म से, व द्रोण से भिड़ पाऊँ''॥7898

पण्डित ने तब कह दिया, ''हे योगी महाराज।
अर्जुन दीं जो युक्तियां, वही सुनूं मैं आज॥7899

[1] अर्जुन तो था महानजन, ईश विभूति खास।
श्रवण करूँ उस के वचन, बैठ आप के पास''॥7900

[2] कहा प्रभु ''हे विप्रवर, अर्जुन की जो बात।
उन युक्तियों में सार बहु, एकादश (११) थीं तात॥7901

---

1. देखें गीता 10.37
2. अर्जुन द्वारा रण से विमुख हो कही हुई ग्यारह युक्तियाँ:-
   1. इस युद्ध की इच्छा वाले खड़े हुए स्वजन समुदाय को देख कर मेरे अंग शिथिल होते जा रहे हैं और मुख भी सूखा जाता है और मेरे शरीर में कम्पन तथा रोमाञ्च होता है। (गीता 1.28,29)
   2. मेरे हाथ से गाण्डीव धनुष भी गिरता है और त्वचा भी बहुत जलती है (गीता 1.30)

अगले पृष्ठ पर -

प्रथम बात जो उस कही, शिथिल भया मम गात।
विषादग्रस्त हूँ भया, हाथ न हिलते तात॥7902

मम वदन भी सूख रहा, स्थिर नहीं है चित्त।
भया शरीर रोमाञ्चित, किमि लड़ूँ मैं मित्त॥7903

बात दूसरी जो कही, अर्जुन ने उस काल।
मम कर से गांडीव भी, गिर रहा इस काल॥7904

---

3. मैं विजय को नहीं चाहता और राज्य तथा सुखों को भी नहीं चाहता। हमें राज्य से क्या प्रयोजन अथवा भोगों और जीवन से भी क्या प्रयोजन क्यों कि जिन के लिए राज्य भोग और सुखादिक इच्छित हैं वे ही ये सब धन और जीवन की आशा को त्याग कर युद्ध में खड़े हैं। (गीता 1.32,33)
4. गुरुजन, ताऊ-चाचे, लड़के और वैसे ही दादा, मामा, ससुर, पोते, साले तथा और भी सम्बंधी लोग हैं। इन सब को मारना मैं नहीं चाहता।
5. तीन लोक के राज्य के लिए भी मैं इन को मारना नहीं चाहता फिर पृथ्वी के लिए तो कहना ही क्या। (गीता 1.32)
6. धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर भी हमें क्या प्रसन्नता होगी। इन आततताइयों को मार कर हम कैसे सुखी होंगे। (गीता 1.36,37)
7. यद्यपि लोभ से भ्रष्टचित्त हुए ये लोग कुल के नाशकृत दोष को नहीं देखते हैं, परन्तु कुल के नाश करने से होते हुए दोष को जानने वाले हम लोगों को इस पाप से हटने के लिए क्यों नहीं विचार करना चाहिए। (गीता 1.38,39)
8. कुल के नाश होने से सनातन कुल, धर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म के नाश होने से संपूर्ण कुल को पाप भी बहुत दबाते हैं। (गीता 1.40)
9. पाप के अधिक बढ़ने से कुल की स्त्रियां दूषित हो जाती हैं। स्त्रियों के दूषित होने पर वर्ण संकर संतानें उत्पन्न होती हैं। (गीता 1.41)
10. नष्ट हुए कुल धर्म वाले मनुष्यों का अनन्त काल तक नरक में वास होता है, ऐसा हमने सुना है। (गीता 1.44)
11. यदि मुझ शस्त्र रहित, न सामना करने वाले को शस्त्र धारी धृतराष्ट्र के पुत्र रण में मारें तो वह मरना भी मेरे लिए अति कल्याण कारक होगा। (गीता 1.46)

शस्त्र बिना किमि लड़ सकूँ, तुम्हीं कहो हे मीत।
मम त्वचा भी जल रही, भ्रमित भया है चीत॥7905

बात तीसरी कही स्पष्ट, अर्जुन ने उस काल।
विजय की न चाह मुझे, या राज्य की त्रिकाल॥7906

राज्य जिन के लिए वही, मरने को तय्यार।
खड़े यहां हैं सामने, कर में ले हत्थ्यार॥7907

मार्मिक चौथी बात कही, जो थी युक्ति स्पष्ट।
अपने हाथों होय किमि, अपनें ही जन नष्ट॥7908

कौरव दुष्ट हैं सही, फिर भी मेरे भ्रात।
भाइयों को मैं मारूं, अनुचित है यह बात॥7909

ताऊ चाचे व गुरुजन, और संबन्धी मित्त।
इन की हत्या मैं करूँ, माने न मम चित्त॥7910

बात पांचवी भी कही, इसी के उस साथ।
पृथ्वी का न राज्य चाहूँ, न तीन लोक का नाथ॥7911

छटी बात अर्जुन कह पाई, युक्ति धर्म की उस बताई।
पाप के भागी होंय हम नाथ, वध कर भाइयों का निज हाथ।
सातवीं बात उस कह दीनी, शास्त्रों में थी वह उस चीनी।
कुल का नाश देख रहे मीत, परिणाम उस का लावें चीत।
कुल के नाश का जो परिणाम, अति भयंकर होत है श्याम।

बात आठवीं उस कही स्पष्ट, कुल के धर्म भी होवें नष्ट।
पापों का आचरण बढ़ जाये, वंश पाप में ही दब जाये।
नवम बात अर्जुन कह पाया, पापों का परिणाम जताया।
कुल में पाप जब आ समायें, दूषित कुल ललना हो जायें।

दो०- कुल ललनाओं के दोष से, वर्णसंकर संतान।
माटी में मिल जाय तब, कुल की सारी शान॥7912

दशम बात भी साफ कही, अर्जुन ने उस काल।
नष्ट वंश के धर्म से, वास नरक चिरकाल॥7913

एकादश बात यह कह पाया, निश्चय अपना स्पष्ट बताया।
धृतराष्ट्र पुत्र मुझ को मारें, निहत्थे पर वार कर डारें।
वह परम कल्याण की बात, स्पष्ट बात मेरी यह तात।
बात जो अर्जुन की यह सारी, प्रभु ने मुख से स्वयं उच्चारी।
दत्तचित्त हो पण्डित सुन पाया, और तब उस निज भाव बताया।
योगिवर अर्जुन की सब बात, इस का प्रत्युत्तर हो क्या तात।
कहा प्रभु अब तुझे बतायें, कृष्ण के उत्तर सभी सुनायें।
विषादी अर्जुन को भगवान, कहा जो सुनिये विप्र सुजान।

दो०- कृष्ण ने उत्तर जो दिया, अर्जुन को वह जान।
वह अलौकिक ज्ञान ही, गीता करत बखान॥7914

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'विषाद योग' नाम - प्रथम अध्याय

दूसरा अध्याय

'सांख्य योग[1]'

विषाद में अर्जुन था भरमाया, और कृष्ण को वह कह पाया।
शिष्य अब मुझ को अपना जान, शिक्षा दीजिये हे भगवान।
कहा कृष्ण हे अर्जुन प्यारे, पण्डित्य के तू वचन उच्चारे।
एक बात तुम लो यह जान, मौत पै करे न शोक सुजान।
आत्म द्रष्टा जो जन मीत, उस को लो तुम पण्डित चीत।
अन्तवन्त देहों को जानो, आत्मा अविनाशी पहचानो।
आत्मा का न जन्म हो पाया, आत्मा का न अन्त हो पाया।
आत्मा को अजन्मा जानो, शाश्वत और पुरातन मानो।

दो०- पुराने वस्त्र उतार कर, जिमि ग्राहें नवीन।
जीर्ण देह त्याग तिमि, आत्मा ग्राहे नवीन॥7915

आत्मा को न छू सकत, शस्त्र और हुताश।
नीर न गीला कर सकत, त्रिकाल न होत विनाश॥7916

---

1. श्रीमद्भगवद्गीता का दूसरा अध्याय 'सांख्य योग' अर्थात आत्म ज्ञान का है। इस में दर्शाया गया है कि विषाद ग्रस्त व्यक्ति अथवा नश्वर जगत से जो विरक्त हो उसे संसार त्याग कर जगत से विमुख नहीं होना चाहिए बल्कि नश्वर से चित मोड़ कर अन्तर्मुखी हो अनश्वर आत्मा में चित्त लगाना चाहिए।

जब व्यक्ति को आत्म बोध हो जाये तो उस की बुद्धि स्थिर हो जाती है और कर्तव्य अकर्तव्य का बोध हो जाता है और भ्रांतिमुक्त हो जाता है। इस अवस्था को गीता में बुद्धियोग का नाम दिया है इन दोनों साधनों की शिक्षा भगवान कृष्ण ने दूसरे अध्याय में दी है। (देखें गीता 2.39)

आत्मा को अव्यक्त लो जान, आत्मा को अचिन्त्य भी मान।
अविकारी भी इस को जानो, नित्य व इस को सर्वगत मानो।
इस विध मनन में जो जन लाये, मोह व शोक से मुक्ति पाये।
इस को जो जन देखन चाहे, डूब आश्चर्य में ही वह जाये।
सुन कर इस का होत आश्चर्य, कहे कोई क्या पण्डितवर्य।
सब देहों में छिपी है जानो, कोई न सके इसे मार पहचानो।
शोक करना इस हेतु व्यर्थ, दुःखी होना भी होत व्यर्थ।

दो०- शोक में जो जन डूबता, वह अज्ञानी मीत।
आत्मा के नित्य रूप को, न समझे उस का चीत॥7917

अर्जुन को वहां कृष्ण बतायें, शोक न संबंधिन का कर पायें।
अपना वह तो धर्म पहचाने, अपने धर्म को उत्तम जाने।
अपना धर्म जो त्याग दिखाये, अपकीर्ति उस को हि मिल पाये।
अपकीर्ति संभावित जन की मीत, मृत्यु से होय बदतर चीत।
युद्ध में मरना श्रेयस्कर होय, स्वर्ग प्राप्ति जन इस से गोय।
होय विजयी राज्य को पावे, वीर त्याग न युद्ध को जावे।
अर्जुन को इस विध समझाया, आत्मिक बोध उसे करवाया।
और धर्म का दीन उपदेश, निज कर्म नहीं त्यागे लेश।

दो०- रहे करत स्वकर्म को, जग से रह निर्लिप्त।
श्री कृष्ण भगवान ने, ज्ञान दिया जग हित॥7918

'बुद्धियोग' का ज्ञान यह, विलक्षण इक ज्ञान।
प्रकट भयें भगवान जब, देवें नूतन ज्ञान॥7919

'बुद्धियोग' क्या होत है, पण्डित पूछी बात।
कहा प्रभु हे विप्रवर, यही कहूँ अब तात॥7920

'बुद्धियोग' का ज्ञान जो, दिया कृष्ण भगवान।
उस की जोय विशेषता, उसे करूँ बखान॥7921

[1] बुद्धि योग की खूबी जान, कर्म बन्धन को काटे मान।
कर्म करे जन फंसे नाहीं, गुण विशेष इस योग के माहीं।
दूजा गुण सुन इस का मीत, असफल कर्म न हो कभी चीत।
फल विपरीत और हानि जोय, इस योग में कभी न होय।
विशेष बात इस की यह जान, जन्म मरन के भय से त्राण।
स्वल्प प्रयास भी इस में जोय, फल महान इस से जन गोय।
अन्तिम बात भी सुन लो मीत, बुद्धि हो इस से स्थिर लो चीत।
इस योग का नाम लो जान, इस को 'बुद्धि योग' पहचान।

दो०- तात्पर्य बुद्धियोग का, जानो मेरे मीत।
स्थिर बुद्धि निज कर्म में, होवे जन की चीत॥7922

बुद्धि स्थिर जिस की हो जाये, 'स्थित प्रज्ञ' वही जन कहलाये।

बुद्धि योग की विशेषतायें : - (गीता 2.39, 40, 41)

1. बुद्धि योग कर्मों के बंधन से छुड़ाता है।
2. बुद्धियोग में अभिक्रम (प्रयत्न-endeavour) का नाश नहीं होता।
3. बुद्धियोग में प्रयत्न का उलटा फल (प्रत्यवायः) नहीं होता।
4. बुद्धियोग का थोड़ा सा भी अभ्यास जन्ममरण के महान भय से रक्षा करता है।
5. बुद्धियोग से बुद्धि निश्चयात्मिका अर्थात् स्थिर हो जाती है। (resolutory in one's purpose)

स्वकर्म में ही स्थिर हो चित्त, इच्छा आये न चित्त में मित्त।
कर्म के फल को भी न ध्याय, जन स्वधर्म कर्म कर पाय।
कर्म में जन का है अधिकार, होय न फल से कुछ सरोकार।
कर्म योगी का होता धर्म, योगी त्यागत नहीं निज कर्म।
सिद्धि असिद्धि में रहत समान, 'समत्व योग' इसे पहचान।
कर्म का फल न योगी पाता, पाप पुण्य से अछूता रहता।
कर्म के फल को त्याग के जाये, 'अनामयपद' को योगी पाये।

दो०- कर्म फलों को त्याग कर, निश्चल हो जाये बुद्ध।
अचल समाधि में रहे, योगी वह प्रबुद्ध॥7923

पूछा अर्जुन हे महादानी, उस योगी की क्या निशानी।
स्थितप्रज्ञ जो होवे मीत, कहें सकल मोहे उस की रीत।
[1]सुन अर्जुन की वह जिज्ञास, कृष्ण कहा ला मुख पै हास।
सुन अर्जुन मैं तुझे बताऊँ, स्थितप्रज्ञ का स्वभाव जताऊँ।
मन की सकल कामना त्याग, आत्मचिन्तन में जाये लाग।
वह स्थितप्रज्ञ कहलाये, जगत पूज्य वह जन हो जाये।

---

1. 'स्थितप्रज्ञ' योगी के लक्षण :-
   1. मनस्थ सकल कामनाओं का त्याग।
   2. आत्मा से आत्मा में संतुष्टि।
   3. दुख प्राप्ति पर उद्वेग नहीं।
   4. सुखों की प्राप्ति से निष्पृहत।
   5. राग, भय, क्रोध का नाश।
   6. सर्वत्र स्नेह रहित। शुभ या अशुभ की प्राप्ति में न प्रसन्नता और न ही द्वेष।
   7. कछुए के समान वह इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है। जैसे कछुआ अपने अंगों को समेट लेता है।
   8. परमात्मा का साक्षात्कार होने पर विषयों से संपूर्ण निवृत्ति।

आत्मा में ही रहे जो लीन, स्थित प्रज्ञ वह लो जन चीन।
दुख आये उद्विग्न न होये, स्थित प्रज्ञ जानो जन सोय।
सुखों की न कामना होये, स्थित प्रज्ञ जानो जन सोय।
राग भय और क्रोध विहीन, स्थित प्रज्ञ वह लो जन चीन।
शुभ आये व अशुभ आ जाये, स्थित प्रज्ञ न डोलन पाये।

दो०- कछुआ जिमि समेटता, निज अंगों को मीत।
इन्द्रिन को तिमि वश करे, स्थित प्रज्ञ वह चीत॥7924

इन्द्रिन मन को हरत हैं, उन को करत अधीन।
ऐसे जन को जानिये, स्थित प्रज्ञ प्रवीन॥7925

स्थित प्रज्ञता में गुण विशेष, विषय न उस को भावे लेश।
उस को प्रभु का साक्षात्कार, विषयों से न लेश भी प्यार।
विषयों को जन जोय ध्यावे, संग विषयों का वह कर पावे।
विषय संग से उपजत काम, कामी ग्राहे पथ जो वाम।
काम क्रोध को ही उपजावे, बुद्धि स्थित नहीं रह पावे।
क्रोध से संमोह उपजत जान, संमोह से स्मृति का भ्रमान।
स्मृति भ्रम से हो बुद्धि नाश, बुद्धि नाश से सर्वस्व नाश।
नाश से जन वही बच पावे, स्थित प्रज्ञता जो अपनावे।
पण्डित पूछी प्रभु से बात, मेरा प्रश्न योगिवर तात।
इन्द्रिन संग विषय हैं लागे, विषयों को जन किस विध त्यागे।

दो०- विषय इन्द्रिन के साथ हैं, इन्द्रिन हैं जन साथ।
स्थित प्रज्ञ जन किमि भये, इस स्थिति में नाथ॥7926

कहा प्रभु जो प्रश्न कर पाया, गीता मध्य उत्तर है आया।
इन्द्रियों से मन होय वियुक्त, गीता कहे उस जन को युक्त।
इन्द्रियां विचरें विषयन माहिं, चित्त विलग रहे तिन ताहिं।
ऐसे जन का शुद्ध हो चित्त, 'प्रसाद अवस्था' में वह मित्त।
'प्रसाद' से सब दुखों का हान, 'प्रसाद' से स्थित प्रज्ञता मान।
मन इन्द्रिन संग यदि लागे, 'स्थितप्रज्ञता' हाथ न लागे।
'प्रज्ञता' हरी जाये तब ऐसे, वायु नाव को हर ले जैसे।
पूछी प्रभु जी पण्डित से बात, उत्तर मिला क्या तुम को तात।

दो०- बोला पण्डित नाथ जी, स्पष्ट भयी सब बात।
इस प्रसंग में और भी, सुनना चाहूँ तात॥7927

प्रभु जी पण्डित से कह पाये, विप्रवर गीता जो बताये।
उसी को मैं अब दोहराऊं, कृष्ण चन्द्र के वचन सुनाऊँ।
स्थितप्रज्ञ का जीवन जानो, संसार से विलक्षण मानो।
जनता की जो होती रात, 'स्थितप्रज्ञ' का दिन वह तात।
जनता का जो दिन हो भाई, स्थितप्रज्ञ की रात कहाई।
विशेष बात कृष्ण कह पाई, स्थितप्रज्ञ गहे शांति भाई।
स्थित प्रज्ञ का हृदय जानो, गहरे समुद्र सम पहचानो।
समुद्र सीमा में रह पाये, स्थित प्रज्ञ वही गुण अपनाये।
योगी रहत सदा ही शांत, कामना करे न उसे अशांत।

दो०- भरा पूरा समुद्र जो, बहु नदियों को गोय।
त्यागत नहीं मर्याद वह, योगी ऐसा होय॥7928

कामना सकल त्याग जो, संग ममता न लाग।
निरहंकारी योगी, शांत रहत महाभाग॥7929

ऐसी स्थिति यह जानिये, 'ब्राह्मी' इस का नाम।
अन्तकाल भी होय यदि, गहे ब्रह्म का धाम॥7930

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'सांख्य योग' नाम - दूसरा अध्याय

तीसरा अध्याय

'कर्म योग'

प्रभु जी से सुनी जब सारी बात, बोला पण्डित हे मम तात।

दो॰- अर्जुन खड़ा था युद्ध में, कृष्ण दें उसे ज्ञान।
लड़ने का व आत्म का, दोनों किमि समान॥7931

कृष्ण कहें तू युद्ध कर, संग दें आत्म ज्ञान।
मन मेरा इस भ्रांत में, दोनों किमि समान॥7932

प्रभु जी पण्डित को कह पाये, तेरे मन विचार जो आये।
वही विचार अर्जुन मन आया, और कृष्ण से कह वह पाया।
हे कृष्ण तुम बात कह पायी, कर्म से बुद्धि महान बतायी।
निश्चित बात मुझे बतलाओ, चित्त मेरा न तुम भ्रमाओ।
बुद्धि कर्म से अगर महान, क्यों लड़ूं मैं फिर भगवान।
सुन कर अर्जुन की जिज्ञास, कृष्ण दिया जो उत्तर खास।
सकल भ्रांति को हरने हारा, 'कर्मयोग' वह जग से न्यारा।
कृष्ण बताई निष्ठा दोय, जो प्रतिष्ठित समाज में होय।
[1]'सांख्यी' 'ज्ञान योग' को माने, 'योगी' 'कर्मयोग' सन्माने।
ज्ञान न केवल काम में आवे, कर्म बिना न जन कुछ पावे।
लाख यत्न भी को कर पाये, न कर्म से पीछा छूटन पाये।
रह सकत न कोई जन मीत, कर्म बिना इक क्षण भी चीत।

1. सांख्यी - सन्यासी

कर्म को जो त्याग दिखलाये, 'कर्म त्यागी' न वह कहलाये।
इन्द्रियों से तो कर्म त्यागे, भीतर मन चिन्ता में लागे।
'मिथ्याचारी' वह जन जान, उस को सन्यासी न पहचान।
बाल बुद्धि ही जन वह होय, सांख्य व योग को अलग जो गोय।

दो०- ज्ञान बिना न कर्म है, कर्म बिना न ज्ञान।
इस तथ्य को समझाते, तत्व ज्ञानी मान॥7933

इन्द्रिन को जन वश करे, करें इन्द्रिन निज कर्म।
इसी कर्म को कहत हैं, ज्ञानी जन 'योग कर्म'॥7934

इस विध पण्डित को समझाया, गीता का 'कर्म योग' बताया।
कहा पण्डित हे योगिराज, स्पष्ट ज्ञान मिला है आज।
कहा प्रभु मैं फिर कथ पाऊँ, कृष्ण चन्द्र का मत बतलाऊँ।
कृष्ण चन्द्र स्पष्ट बतलायें, कर्म बिना न कुछ कर पायें।
नियत कर्म हर इक कर पाये, कर्म त्याग न कभी दिखाये।
'कर्म-त्याग' से कर्म महान, 'कर्म योग' का भाव यह जान।
'कर्म-योग' को यज्ञ पहचान, अन्यथा जीवन बंधन मान।
कृष्ण कहे हे अर्जुन भाई, 'मुक्त-संग' हो करो कमाई।
ईश्वर ने जो सृष्टि बनाई, 'मुक्त-संग' हो उस रच पाई।
'यज्ञ रूप' अतः सृष्टि जान, कर्म योग ईश्वर का मान।

दो०- ईश्वर का संकेत यह, जन करे जो काम।
यज्ञ रूप ही होय वह, 'कर्म योग' लो जान॥7935

'कर्म योग' के 'यज्ञ' में, देवों का जो स्थान।
गीता वर्णन वह करे, देव पांच लो जान॥7936

[1]पांच तत्व जो देव हैं, उन का होय विकास।
विकसित हों वे देव जब, जन का संग विकास॥7937

देव हित जन काम कर पावें, जन को देव लाभ पहुंचावें।
इस विध परस्पर हो जो काम, सुखी रहे तब जगत तमाम।
एक बात जो खास बताई, देवों से जो मिलता भाई।
[2]उसे बांट प्रयोग में लायें, अकेले में ही न खा जायें।
'कर्म योग' का यही उपदेश, यज्ञ रूप ही कर्म हमेश।
कर्म योग को न को त्यागे, पर जो इस में न अनुरागे।
पाप में डूबा उस को जानो, व्यर्थ ही जीवन उस का मानो।
अनासक्त रह जो करता काम, और निरन्तर भजता राम।
'परम पुरुष' को वह जन पाता, मानव जीवन सफल बनाता।

दो०- जनकादि जन जो भये, भये कर्म से सिद्ध।
लोक संग्रह हित कर कर्म, भये योगी प्रसिद्ध॥7938

जन श्रेष्ठ जो कर्म करे, अन्य करें अनुकरण।
प्रमाणित उन का कर्म हो, जनता करत अनुकरण॥7939

---

1. पांच देव :-
   1. अग्नि देवता 2. जल देवता 3. वायु देवता
   4. आकाश देवता 5. पृथ्वी देवता
2. भाव है कि पृथ्वी देव से जो मिले वह उपज सभी लोग बांट कर प्रयोग में लायें। तभी सुख होगा।

मैं भी करता कर्म हूँ, कहें कृष्ण भगवान।
करने की आवश्यकता, मुझे नहीं कुछ जान॥7940

यदि करूँ न कर्म मैं, त्यागूँ कर्म लो जान।
मेरा करें अनुकरण जन, जग की होवे हान॥7941

जन साधारण कर्म करत, हो उस में आसक्त।
विद्वान करता कर्म जब, वह रहत अनासक्त॥7942

बात विशेष एक कही, कृष्ण चन्द्र भगवान।
आसक्त जन को देख कर, उसे न कर परेशान॥7943

कहा पण्डित मैं समझ न पाया, नूतन ज्ञान यहां सुन पाया।
आसक्त पुरुष को दें न ज्ञान, इस में रहस्य क्या भगवान।
कहा प्रभु आगे पढ़ पायें, कृष्ण विस्तार से सब बतलायें।
प्रकृति के गुण तीन लो चीत, सत्व, राजस हैं तामस मीत।
तीन गुणों में आसक्त संसार, करता कर्म वह होय लाचार।
अनासक्त पुरुष का धर्म यह मीत, आसक्त का करे न विचलित चीत।
प्रकृति जन से कर्म करावे, निग्रह वहां न कुछ कर पावे।
ध्यान से श्रवण करी जब बात, पण्डित बोला योगिवर तात।
अनासक्त आसक्त का सब भेद, सुन पाया मैं बिन ही खेद।
इक प्रश्न मम मन में आय, अनासक्त जन भी जग बह जाय।
इस का कारण बताओ मीत, शांत करो मम भ्रमित जो चीत।
कहा प्रभु तुम सत्य कह पाय, अनासक्त जन भी जग बह जाय।
कृष्ण भगवान कही जो बात, वही सुनो अब मेरे तात।

दो॰- अर्जुन ने था प्रश्न किया, हे कृष्ण मम मीत।
इच्छा के विरुद्ध भी, पाप करें किस रीत॥7944

भगवान उत्तर जो दिया, वह ज्ञान की खान।
उस से बड़ा न ज्ञान हो, लो पण्डितवर जान॥7945

कहा कृष्ण हे अर्जुन प्यारे, काम क्रोध दो दुश्मन भारे।
ज्ञानिन का भी ज्ञान हर लेते, विपरीत करा कर्म हैं देते।
इन्द्रिन को वश में कर लेवें, बुद्धि वा मन को हर वे लेवें।
इन से बचने का उपाय, श्रवण करो अब तुम चित्त लाय।
काम इन्द्रिन को करत अधीन, मन को भी है करत मलीन।
बुद्धि को भी हर ले जाता, जन फिर उस के वश हो जाता।
परवश उस के मानुष होय, ज्ञान अपना सब ज्ञानी खोय।
इस का उपाय अब बतलायें, बचें वे जो उस पै चल पायें।

दो॰- इन्द्रियों को वश में करे, हो मन उस उपरान्त।
बुद्धि को फिर वश करे, सिमिर प्रभु हो शांत॥7946

भगवान का जब संग हो, काम क्रोध हों दूर।
आ सकें नहीं पास वे, रहते जन से दूर॥7947

बुद्धि से परे राम हैं, बुद्धि लेवे जान।
'बुद्धि योगी' जो भये, योगी वही महान॥7948

बोल पड़ा तब पण्डित, सुनिये मेरी बात।
मेरा चित्त भ्रांत भया, सुन बात आप की तात॥7949

'बुद्धि योगी' बन पाना, सुगम नहीं है मीत।
इन्द्रियों को किमि वश करें, व लेवें काम को जीत॥7950

पण्डित बात ठीक कही, उत्तर प्रभु जी दीन।
इस का उत्तर जोय है, पाठ अगले में चीन॥7951

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'कर्म योग' नाम - तीसरा अध्याय

चौथा अध्याय

'ज्ञान कर्म सन्यास योग'

दो०- 'ज्ञान कर्म सन्यास' का, अध्याय चौथा जान।
'बुद्धि योगी' किमि जन भये, इस में कीन बखान॥7952

अर्जुन को श्रीकृष्ण बतलायें, परंपरागत योग जतलायें।
आदि सृष्टि से योग चलि पाया, बाद में वह रुक था पाया।
मैंने था 'विस्वान' को दीन, सृष्टि के आदि में जो उस लीन।
विस्वान से 'मनु' ने पाया, मनु ने आगे उसे चलाया।
मनु ने 'इक्ष्वाकु' को था दीना, अन्य राजाओं ने फिर लीना।
दीर्घ कालान्तर में यह योग, नष्ट भया और भूले लोग।
मैं यह योग तुझे बतलाऊँ, 'बुद्धियोग' इसे कथ पाऊँ।
ज्ञान कर्म सहित सन्यास, जानो 'बुद्धियोग' है खास।
ज्ञान सहित जो कर्म कर पायें, फल की इच्छा मन न लायें।
उस योग की समता नाहीं, अर्जुन कहूँ वह तेरे ताहीं।

दो०- यह अनुपम योग जो, राजर्षियों का योग।
गृहस्थ में ही वास कर, मोक्ष पायें जिमि लोग॥7953

सुन कृष्ण की बात को, अर्जुन ने पुछ लीन।
आप का जन्म अब भया, किमि विस्वान को दीन॥7954

कृष्ण ने अर्जुन को समझाया, मैंने तुझ को था बतलाया।

आत्मा सदा से ही है भाई, कई बार यह देह में आई।
तेरे जन्म भी भये अनेक, मेरा जन्म भी न यह एक।
[1]तुझे तो स्मरण न सब वे मीत, मुझे प्रत्येक की है प्रतीत।
मैं तुझे एक भेद बताऊँ, केवल तुझ को ही कथ पाऊँ।
प्रकृति का मैं ईश हूँ भाई, प्रकृति मेरे वश सदाई।
जग में हो जब धर्म की हान, मेरा तब हो जग में आन।
धर्म को करूँ स्थापित मीत, अधर्म का नाश करूँ हर रीत।

दो०- पापी जन न सह सकूँ, इस जगत में मीत।
नष्ट करूँ मैं वे सभी, जिस भी होवे रीत॥7955

अब मैं तुझे वह योग बताऊँ, आगे का प्रसंग चलाऊँ।
जो योग दिया था पूर्व काल, कहूँ तुझे मैं वही इस काल।
'बुद्धियोग' जानो वह मीत, योगी चले उस पर हर रीत।
[2]जन्म न मम साधारण मानो, इस को दिव्य जन्म पहचानो।
कर्म न मम साधारण मानो, उन्हें दिव्य कर्म पहचानो।
इमि मुझे पहचान जो पाये, बहुर न जगती में वह आये।
मेरा योग जन वही ग्राहवें, स्मरण मुझे जो सदा कर पावें।
ज्ञान व तप से पूतन सारे, भक्ति भाव में रहते न्यारे।
जिस श्रद्धा से मुझे ध्यावें, मुझ से फल वे वैसा पावें।
मेरे प्रति जो उनका भाव, मेरा भी उन प्रति वह भाव।
मेरे भक्त मुझे पहचानें, मेरे कर्मों को भी जानें।
कर्म करता भी मैं अकर्ता, जग का कर्ता भी अकर्ता।

1. देखें योग दर्शन - अपरिग्रह स्थैर्ये जन्मकथन्ता संबोधः - योग दर्शन 2.39
2. देखें योग दर्शन - भव प्रत्ययो विदेह - प्रकृतिलयानाम् - योग दर्शन 1.19

कर्म के बंधन में न आऊँ, कर्म करूँ न फल कुछ पाऊँ।
इस मेरे स्वरूप को जानें, अकर्ता पुरुष मुझे पहचानें।

दो॰- जन्म कर्म मम दिव्य हैं, यह ले जो जन जान।
बहुर न आवे जगत में, 'बुद्धियोग' पहचान॥7956

कर्म फल की न इच्छा मोहे, बांध सके न कर्म को मोहे।
मुझ जैसा जो जन हो जाये, बहुर जन्म में वह नहीं आये।
इस योग को तुम पहचानो, पूर्व काल से चला है मानो।
बता रहा हूँ तुझे वह योग, छूटे बंधन से जन कर योग।
योग में कर्म आवश्यक जान, कर्म अकर्म विकर्म पहचान।
कर्म में अकर्म को ले जान, बुद्धिमान वह पुरुष पहचान।
ज्ञान अग्नि से दग्ध हों कर्म, बुद्धिमान यह जानें मर्म।
'बुद्धियोग' जो जन अपनाये, बहुर जन्म में वह न आये।

दो॰- कर्म फल को त्याग कर, रहे कर्म में लीन।
चित्त में नहीं आश कुछ, वह योगी प्रवीन॥7957

सिद्धिअसिद्धिमेंसमचित्त, कर्म करे बिन आस।
हर हाल में संतुष्ट जो, जानो योगी खास॥7958

यज्ञरूप सब कर्म हों, बिन समिधा के यज्ञ।
ब्रह्म में अर्पण ब्रह्म हो, ब्रह्म हि भये वह यज्ञ॥7959

'ज्ञान यज्ञ' यह श्रेष्ठ तुम जानो, सर्व यज्ञों से उत्तम मानो।
ज्ञान को यदि तुम पाना चाहो, ज्ञानी गुरु के पास चलि जाओ।
सेवा व परिप्रश्न से मीत, प्रसन्न करो तुम गुरु का चीत।

ज्ञान को जन जभी पा जाये, मोह में नहीं कभी फिर आये।
उस ज्ञान का है गुण महान, सर्वत्र देखे जन भगवान।
सब जीवों को प्रभु में देखे, और सभी में प्रभु को पेखे।
इस ज्ञान का गुण कह पायें, पापी पाप सागर तर जायें।
यह तो नौका है इक मीत, भव सागर से तरे जन चीत।

दो०- अग्नि करे जिमि काष्ट को, भसमसात तत्काल।
ज्ञानाग्नि तिमि भसम करत, कर्म सभी तत्काल॥7960

ज्ञान से न अधिक है, पवित्र कुछ इस लोक।
ज्ञान से सिद्धि प्राप्त करे, ज्ञानी जन इस लोक॥7961

ज्ञान श्रद्धा से मिलत, संयमी जो जन होय।
प्राप्त करत है ज्ञान से, परम शांति भी सोय॥7962

जन अज्ञानी जो भये, और श्रद्धा हीन।
संशयात्मा साथ हो, नाश उसी का चीन॥7963

ज्ञान-कर्म-सन्यास का, मार्ग उत्तम जान।
बंधन में न आ सकत, ऐसा योगी मान॥7964

सुन सकल उपदेश को, पण्डित बोला नाथ।
ज्ञान-कर्म-सन्यास की, मिली शिक्षा इक साथ॥7965

मेरा एक प्रश्न है, सुनिये मेरे नाथ।
ज्ञान मिले संपूर्ण तब, बैठ आप के साथ॥7966

उत्तर उस का दीजिये, मन मेरा हो शांत।
गुरु के ही उपदेश से, मिटे शिष्य की भ्रांत॥7967

कर्म और सन्यास का, किमि मेल हो पाये।
सन्यासी चाहे न कुछ, फल कर्म दे पाये॥7968

कहा प्रभु हम न बतलायें, समाधान श्री कृष्ण से पायें।
अर्जुन थी यही पूछी बात, पाठ अगले में उत्तर तात।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'ज्ञान-कर्म-सन्यास योग' नाम - चौथा अध्याय

पांचवा अध्याय

'कर्म सन्यास योग'

दो०- अर्जुन ने श्री कृष्ण से, थी पूछी यह बात।
कर्म योग सन्यास का, मेल क्या है तात॥7969

अर्जुन को श्रीकृष्ण बतायें, [1]योग सन्यास एक कथ पायें।
अल्पज्ञ इन्हें पृथक पहचानें, विद्वान इन्हें एक ही मानें।
सन्यास से जिस गति को पायें, योग से भी वही पा जायें।
इक की साधना जो कर पाये, दोनों का फल वह पा जाये।
[2]सांख्य व योग एक जो जाने, वास्तव तथ्य वह पहचाने।
एक बात पर लेवो जान, सन्यास से है [3]योग महान।
सन्यासी कहें उस को मीत, राग द्वेष से मुक्त हो चीत।
सुख दुख आदि द्वन्द्व कहायें, सन्यासी को न छूने पायें।
विशेष बात पर इक है भाई, सन्यास न बिन योग हो पाई।

दो०- योग युक्त जो जन भये, वह सन्यासी जान।
कर्ता होय अकर्ता वह, आत्म-शुद्ध पहचान॥7970

आत्म तत्व को देखता, हो अकर्ता मीत।
सारे करता कर्म वह, 'अकर्ता हूँ' उस चीत॥7971

---

1. योग - कर्म योग, बुद्धि योग
2. सांख्य - सन्यास, ज्ञान
3. योग - कर्म योग

देखत, सुनत व सूंघता, रहत सदा मन माहिं।
इन्द्रिन करती कर्म सब, मैं तो कर्ता नाहिं ॥7972

जाता, छूता, सोचता, रहत सदा मन माहिं।
इन्द्रिन करती कर्म सब, मैं तो कर्ता नाहिं ॥7973

श्वास लेता भी होत जब, रहत सदा मन माहिं।
इन्द्रिन करती कर्म सब, मैं तो कर्ता नाहिं ॥7974

बोलता व हो पकड़ता, रहत सदा मन माहिं।
इन्द्रिन करती कर्म सब, मैं तो कर्ता नाहिं ॥7975

त्याग करत हो यदि कुछ, रहत सदा मन माहिं।
इन्द्रिन करती कर्म सब, मैं तो कर्ता नाहिं ॥7976

श्वास लेय उच्छ्वास वा, रहत सदा मन माहिं।
इन्द्रिन करती कर्म सब, मैं तो कर्ता नाहिं ॥7977

इस विध करता कर्म जोय, संग रहित हो मीत।
लिप्त पाप से होत न, जल कमल सम चीत॥7978

अर्जुन को श्री कृष्ण बतायें, योगी जो भी कर्म कर पायें।
इन्द्रियों से या मन से मीत, बुद्धि से होवे अथवा चीत।
संग रहित सब होंवें काम, हों आत्मशुद्धि हेतु तमाम।
फल त्याग जो कर्म कर पाता, स्थिर शांति वह योगी पाता।
इच्छा रख जो करता काम, अयोगी वह दुःख पाये तमाम।

कर्तापन व कामना त्याग, शांत चित्त रहे योग में लाग।
'कर्म-सन्यास' का यह उपदेश, फल की इच्छा रहे न लेश।

दो०- सुन सकल उपदेश यह, पण्डित बोला तात।
'कर्म-सन्यास' योग की, है समझी सब बात॥7979

कर्म तो जन जभी करे, उस से रहे निसंग।
इच्छा चित्त में न रहे, यह सकल प्रसंग॥7980

मैं चाहूँ अब पूछना, आप से हे भगवान।
उस योगी के चित्त में, होता कैसा ज्ञान॥7981

सुन पण्डित की बात यह, बोले योगी राज।
कृष्णचन्द्र ने जो कहा, वही सुनो तुम आज॥7982

योगी ईश्वर को पहचाने, ईश्वर के स्वभाव को जाने।
ईश्वर की रचना जो भाई, उस में अज्ञान की प्रभुताई।
अज्ञान से आवृत्त ज्ञान, इसी कारण मोहित इन्सान।
योगी का हो नष्ट अज्ञान, योगी रहता निष्ठावान।
योगी पुनर न जग में आये, निज ज्ञान से मुक्ति पाये।
योगी जन की समदृष्टि होय, भेद भाव न उस चित्त कोय।
ब्राह्मण हो या हस्ती मीत, गौ हो अथवा श्वान लो चीत।
'ब्रह्मदृष्टि' से सबन निहारे, भेद भाव त्याग के सारे।
एक ब्रह्म जब सब में देखे, स्वयं को स्थित ब्रह्म में पेखे।

दो०- प्रिय पाये हर्ष न होय, अप्रिय पाय न द्वेष।
ब्रह्मज्ञानी जानिये, ब्रह्म में रहे हमेश॥7983

आत्मा में ही लीन हो, बाहिर रुचि न होय।
'ब्रह्मयोग' में युक्त रह, अनश्वर सुख को गोय॥7984

ब्रह्म को हो प्राप्त वह, अन्तर में वह लीन।
अन्तर्ज्योति में रमत, 'ब्रह्मयोगी' प्रवीन॥7985

योगी के सब पाप हों क्षीण, द्वैत भाव न उस में चीन।
'आत्मवश' हो योगी भाई, सर्वहितैषी सुख प्रदायी।
काम क्रोध से वह वियुक्त, संयमी जन वह योग में युक्त।
कहा प्रभु ने विप्र प्रवीन, ये सब गुण जो हैं कथ दीन।
'कर्म-सन्यासी' योगी जोय, ज्ञानी योगी भी हो सोय।
पण्डित बोला हे भगवान, 'कर्म-सन्यास' में गुण महान।
उस का ज्ञान संपूर्ण पाया, प्रश्न मेरे पर मन में आया।
ऐसा योगी किमि को होय, साधना उस की कैसी होय।
कहा प्रभु हे पण्डित भाई, अगले पाठ में देखें जाई।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'कर्म-सन्यास योग' नाम - पांचवा अध्याय

छटा अध्याय

'आत्म संयम योग'

दो०- आत्म संयम के बिना, जन न योगी होय।
आत्म संयम जो करे, वही सफलता गोय॥7986

पण्डित को यहां प्रभु बताया, संयम का महत्व जतलाया।
आत्म संयम का रूप दिखाया, अर्जुन को जो कृष्ण लखाया।
सन्यासी हो व योगी होय, आत्म संयम आवश्यक होय।
पण्डित बोला योगिराज, कहा कृष्ण ने क्या महाराज।
प्रभु जी ने तब बात बताई, गीता में जो है लिख पाई।
ग्यारह संयम जो कर पाये, संयमी पुरुष वही कहाये।
पण्डित बोला हे महाराज, सब बताइये मुझ को आज।
यह बात न कभी सुन पाई, संयम की जो आप बताई।
संयम सारे मैं सुन पाऊँ, ज्ञान गीता का नूतन पाऊँ।
प्रभु जी ने तब सब कथ पाये, [1] संयम जो थे कृष्ण बताये।

1. कर्म फल त्याग

दो०- कर्म के फल का आश्रय, त्याग जो करता कर्म।
संयमी उस को जानिये, जानत योग का मर्म॥7987

---

1. ग्यारह संयम :-
   1. कर्म फल त्याग
   2. सन्यस्त संकल्प

अगले पृष्ठ पर देखें -

योगी और सन्यासी, दोनों एक समान।
कर्म के फल का त्याग, उत्तम संयम जान॥7988

2. सन्यस्त संकल्प

प्रथम संयम यह है कथा, दूसर होय बखान।
त्याग करत संकल्प सब, उत्तम योगी मान॥7989

जो भी लागे योग में, कर्म करे वह मित्त।
इच्छा न होय लाभ की, शांति आवे चित्त॥7990

इन्द्रियों के न वश भये, न उलझे कर्मन माहिं।
संयमी उस को जानिये, योगारूढ़ कहाहिं॥7991

3. आत्म उद्धार

तीसरा संयम अब सुनो, आत्म उद्धार कहाय।
अपना करे उद्धार जो, योगी वह हो जाय॥7992

आत्मा का उद्धार करे, आत्मा न गिर पाय।
अपना मित्र आप जन, शत्रु भी हो जाय॥7993

---

3. आत्म उद्धार
4. विजितेन्द्रिय
5. योग ध्यान
6. नियता हार
7. आत्म चिन्तन
8. मुक्त काम
9. समदर्शिता
10. अभ्यास - वैराग्य
11. कल्याण कर्म

अपना बन्धु आप जन, आप ही शत्रु होय।
इस संयम को जान कर, योगारूढ़ जन होय॥7994

आत्मोद्धार जो न करे, निज शत्रु वह भ्रांत।
आत्मोद्धार करत जो, प्रभु पा रहता शांत॥7995

4. विजितेन्द्रिय - योगारूढ़

तीन संयम ये गीता गाये, संयम चौथा भी वहां आये।
विजितेन्द्रिय जन कथा महान, योगारूढ़ उसी को मान।
शीतोष्ण में रहत समान, दुःख सुख में भी लेवो जान।
मान अपमान में एक रह पाय, ऐसा पुरुष ही योगी कहाय।
ज्ञान विज्ञान का ज्ञाता होय, योगी जन ही जानो सोय।
समबुद्धि वह पुरुष रह पाये, शत्रु मित्र में भेद न लाये।
साधु होय या पापी होय, दोनों प्रति समबुद्धि सोय।
मन व इन्द्रिन को संयम जोय, अति आवश्यक योग में सोय।

5. योग ध्यान

दो०- चौथा संयम है सुना, पंचम लो अब सुन।
योगी वह पहचानिये, संयम का जहां गुण॥7996

पंचम संयम ध्यान का, ध्यान किमि हो पाये।
स्पष्ट रूप से खोलकर, गीता है बतलाये॥7997

आत्म संयम वही कर पाये, स्थिर बैठ जन ध्यान लगाये।
एकान्त स्थान में हो स्थित, एकाग्र करे वहां प्रभु में चित्त।

रह एकाकी वहां वह मित्त, संयमित करे वहां अपना चित्त।
शुद्ध स्थान पर आसन होय, न अति नीचा न ऊँचा सोय।
कुशा ऊपर मृग छाल लगाय, उस के ऊपर वस्त्र बिछाये।
आत्म शुद्धि के हेतु वह मीत, बैठे वहां पर एकाग्र चीत।
दृष्टि नासाग्र पै होवे स्थिर, सर-गर्दन-काय सीध में स्थिर।
शांतमन होय भय से हीन, ब्रह्मचर्यव्रत में रह कर लीन।

दो०- इस विध स्थित होय कर, करे प्रभु का ध्यान।
सदैव करता जो रहे, मुक्ति पाय सुजान॥7998

6. नियताहार

पंचम संयम था यह भाई, छटा सुनो अब चित्त लगाई।
छटा संयम सुगम न जानो, व्रत कठिन है इसको मानो।
इस संयम को जो कर दिखाय, मन की शांति व स्वास्थ्य को पाय।
संयम में आहार विहार, योगी का दृढ़ यह आचार।
काल पै सोना जागरण होय, जीवन संयमित इस विध होय।
भूखा रहना भी है दोष, अति आहार भी होवे दोष।
हो उठना बैठना जिस का युक्त, सर्व दुखों से रहता मुक्त।

7. आत्म चिन्तन

सप्तम संयम बहु गुणकारी, जन्म मरन की हरत बिमारी।

दो०- विनियत कर के चित्त को, कर आत्मा में लीन।
सर्व कामना त्याग जन, संयमित हो प्रवीन॥7999

निर्वात स्थान पै दीपशिखा, जिमि न हिलती मीत।
इस विध निश्चल मन होय, योगी का लो चीत॥8000

चित्त का निरोध होय, योग द्वारा मीत।
आत्मा में ही आत्मा, रमण करे सप्रीत॥8001

सुख उसे जो वहां मिलत, वह अतीन्द्रीय जान।
उस सुख को जो प्राप्त करत, निश्चल उस का ज्ञान॥8002

उस ज्ञान का लाभ कर, निश्चय तब हो जाय।
इस से बड़ा न लाभ कहीं, कुछ भी जन कर पाय॥8003

ऐसी स्थिति वह जानिये, यदि तब दुख भी आय।
चित्त विचलित होत नहीं, जन अडिग रह पाय॥8004

इस संयम को जन करे, जान सर्वोत्तम योग।
गीता कहे इस योग को, 'दुख संयोग वियोग'॥8005

8. मुक्त काम

सप्तम संयम है कहा, सुनो अब अष्टम मीत।
साधन योगी करत जब, हो स्थिर उस का चीत॥8006

पूर्ण स्थिरता तब जन पाये, मुक्त काम जब वह हो जाये।
मन में उपजें जो भी काम, योगी संयमित करे तमाम।
मन से रोके इन्द्रिन सारी, बुद्धि का यह संयम भारी।
धैर्य से बुद्धि करे यह काम, रोके इन्द्रिन शनैः तमाम।

मन का भी करे बुद्धि निरोध, उपजें नहीं जिमि काम क्रोध।
चंचल मन जब जब चल पावे, धैर्य से बुद्धि वश में लावे।
मन शांत जब इस विध होवे, अनुत्तम सुख को योगी गोवे।
रजोगुण उस का होवे शांत, धुलें पाप मिटे सभी भ्रांत।
इस विध जो भी जन कर पावे, 'ब्रह्मरूप' योगी हो जावे।

दो०- इस संयम का जान लो, है फल अनुपम मीत।
सुख अत्यन्त उसे मिले, सदा शांत हो चीत॥8007

9. समदर्शिता

'ब्रह्मरूप' जब जन भये, भेदभाव हों दूर।
प्रभु में ही जग सब दिखे, सब में उस का नूर॥8008

अर्जुन को जब कृष्ण ने, समझाया यह योग।
एक बात विशेष कही, चिन्तन के जो योग॥8009

अर्जुन को श्री कृष्ण बताये, समदर्शी जो जन हो पाये।
सर्वत्र जो मुझे ही देखे, और स्वयं में मुझ को पेखे।
उस से मैं नहीं कभी भी दूर, और न मुझ से वह कभी दूर।
इस विध मेरा जो करत ध्यान, कहीं भी हो मुझ में ही जान।
आत्म दृष्टि से देखन हारा, परम योगी वह जग से न्यारा।
इस विध जब कृष्ण समझाया, अर्जुन ने परिप्रश्न कर पाया।
प्रभु से पण्डित कही तब बात, ''क्या प्रश्न वह सुनूँ मैं तात''।
कहा प्रभु ''मैं प्रश्न बताऊँ, अगले प्रसंग में कथ पाऊँ''।

10. अभ्यास वैराग्य

पूछा अर्जुन हे मम तात, तुम ने साम्य की कही बात।
चंचल मन प्रमाथी सोय, 'साम्य' संयम न संभव होय।

दो०- साम्य न संभव हो सके, मन चंचल है मीत।
बहुत दृढ़ बलवान वह, प्रबल वायु सम चीत॥8010

अर्जुन के इस प्रश्न का, कृष्ण जो उत्तर दीन।
हे पण्डित वर वह सुनो, संक्षिप्त उत्तर चीन॥8011

कहा कृष्ण यह मैं भी जानूँ, चंचल मन प्रबल है मानूँ।
अभ्यास करे जो जन हे मीत, वैराग्य भी उस संग लो चीत।
उस का मन वश में हो पाये, कोई न संशय इस में लाये।
संयमी पुरुष ही योगी होय, असंयमी जन न कुछ भी गोय।
सुन उपाय यत्न कर पाये, संयमी जन सिद्धि पा जाये।
अर्जुन सुनी कृष्ण की बात, फिर प्रश्न उस कीना तात।
पण्डितवर मैं वह बतलाऊँ, अर्जुन पूछा सो कथ पाऊँ।
गूढ़ बात अर्जुन कथ पाया, गूढ़तर उत्तर भी मिल पाया।
अर्जुन ने जो कही थी बात, वही सुनो पण्डितवर तात।

दो०- अर्जुन ने था यह कहा, हे कृष्ण भगवान।
श्रद्धा से जो योग करे, परन्तु निकलें प्राण॥8012

गति क्या उस की होत है, जानूँ मैं भगवान।
कुछ न उस को यहां मिला, न आगे भी लो जान॥8013

संशय मेरा यह भगवान, मुझे मिले अब आप से ज्ञान।
उत्तर तब जो कृष्ण दे पाया, अगला 'संयम' उस में आया।

11. कल्याण कर्म

कहा कृष्ण हे अर्जुन प्यारे, 'कल्याण कर्म' रहें संग हमारे।
योग जो जन अब कर पाये, वह योग उस संग ही जाये।
जन्म योगी का योगिघर होय, आगे साधन करे वहां सोय।
योगभ्रष्ट वह जन कहलाये, पुण्य लोगों के घर उपजाये।
ऐसा जन्म दुर्लभ ही जानो, योगीकुल में जन्म जो मानो।
पूर्व जन्म का जो था ज्ञान, स्मरण भये नव जन्म में आन।
जो अभ्यास पूर्व कर पाये, वह अभ्यास ही दिशा दिखाये।
यत्नवान जो योगी होय, सर्व पापों से मुक्त हो सोय।
परम सिद्धि जन वह ही पाये, अनेक जन्म जब योग कर पाये।
इस विध कृष्ण चन्द्र बतलाया, योगाभ्यास श्रेष्ठ कथ पाया।
तपस्वियों से योगी महान, ज्ञानियों से भी वह महान।
कर्मकाण्ड से अधिक है योग, हे अर्जुन तुम कर लो योग।

दो०- योग महत्व जताय कर, कही खास इक बात।
सर्वोत्तम योगी जानो, भजन करे मम तात॥8014

अन्तिम संयम यही कथा, अर्जुन को भगवान।
भक्त श्रद्धावान हो, योगी श्रेष्ठ पहचान॥8015

ग्यारह संयम श्रवण कर, जो कथे भगवान।
पण्डित ने प्रभु से कहा, ''संशय मम श्रीमान॥8016

मिले योग से ज्ञान जो, कैसा हो वह ज्ञान''।
कहा प्रभु ''हे पण्डितवर, सुनो वह भी ज्ञान॥8017

अगले पाठ में वह सुनो, जो 'ज्ञान विज्ञान'।
उस ज्ञान को पायकर, योगी होत महान''॥8018

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'आत्म संयम' नाम - छटा अध्याय

सप्तम अध्याय

'ज्ञान-विज्ञान योग'

दो०- आत्मदर्शन ज्ञान है, प्रकृति का विज्ञान।
इन दोनों का बोध जो, इस अध्याय में जान॥8019

यह ज्ञान उन को मिले, प्रभु भक्त हों जोय।
प्रभु का सत्स्वरूप जो, जान सकें गे सोय॥8020

इस ज्ञान के आगे, है न और ज्ञान।
विरला यत्नशील ही, इसे पात पुमान॥8021

[1] अष्ट विध होत प्रकृति भाई, उन के नाम सुनो मन लाई।
पृथ्वी जल और अग्नि पहचान, वायु, आकाश मन बुद्धि जान।
अहंकार को हम साथ मिलायें, अष्ट विध प्रकृति जानन पायें।
यह प्रकृति अपरा पहचान, परा प्रकृति भिन्न इस से मान।
जीव रूप परा प्रकृति भाई, जगत बना सो विश्व कहाई।
दोनों से लो भिन्न इक जान, सकल जगत का जो भगवान।
विश्व विधाता उस को मानो, प्रलयकर्ता वही पहचानो।
उस से परे न कुछ भी होय, सब में ओत प्रोत है सोय।
जल मध्य उसे रस लो जान, सूरज में प्रकाश पहचान।

---

1. अष्ट विध प्रकृति :
पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि, अहंकार

वेदों में वह ओम है भाई, आकाश मध्य शब्द सुहाई।
पुरुषों में पौरुष लो जान, पृथ्वी में सुगंध पहचान।
अग्नि में वह तेज है भाई, सब का जीवन वह सुखदाई।

दो०- तप तपस्वियों का वही, जग का सनातन बीज।
बुद्धिमतों की बुद्धि है, तेज तेजस्वियों बीच॥8022

बल बलवानों का कथा, धर्म अविरुद्ध काम।
सात्विक राजस तामस, उसी से गुण तमाम॥8023

तीनों गुण हैं ऊपजे, उस से लेवो जान।
वह पर त्रिगुणातीत है, उस में गुण न मान॥8024

पण्डित बोला "नाथ जी, ईश में गुण न कोय।
कहां रहें वे गुण सभी, प्रश्न मेरा यह होय॥8025

उन गुणों का प्रभाव भी, कथ दो मेरे नाथ।
सुनूँ रोचक प्रसंग यह, बैठ आप के साथ"॥8026

प्रभु जी पण्डित को कथ पाये, "त्रयगुण गीता में जो आये।
सारे जग में ओत प्रोत, जग जीवन के वही स्रोत।
माया प्रभु की यही लो जान, तीन गुणों की उसे पहचान।
दिव्य रूप वह जानो भाई, माया है अपार कहलाई।
इस का पार वही जन पावे, शरण प्रभु की जो आ जावे।
परन्तु बात यह इक लो जान, मूढ़ पुरुष न सकें पहचान।
दुष्कर्मी भी जो जन होय, प्रभु भक्ति कर सकत न सोय।

सुकृति जन जो होवें मीत, भजन करें वे प्रभु सप्रीत।
भक्तों में भी भेद हों भाई, भिन्न भिन्न सब की हो कमाई।
चार प्रकार के भक्त लो जान, उन के नाम से होत पहचान।
प्रथम भक्त 'आर्त' लो जान, दूज भक्त 'जिज्ञासु' मान।
तीसरा 'अर्थार्थी' भाई, चौथा 'ज्ञानी' भक्त कहलाई।

दो०- चारों भक्त उदार हैं, ज्ञानी जान विशेष।
कौन गुण हैं ज्ञानी में, गीता कथे अशेष॥8027

ज्ञानी का गुण खास यह जान, ज्ञानी प्रभु की आत्मा मान।
यह गुण खुद कृष्ण बताया, ज्ञानी भक्त विशेष जताया।
और गुण जो कृष्ण बताये, वे भी गीता में लिख पाये।
ज्ञानी भक्त का प्रभु हो लक्ष्य, अवश्य प्राप्त करत वह लक्ष्य।
ज्ञानी भक्त दुर्लभ लो जान, देखे सर्वत्र वह भगवान''।

दो०- प्रभु से सुन इस बात को, पण्डित बोला तात।
''ज्ञानी के गुण हैं कहे, सुनूँ अन्य के तात॥8028

कहा प्रभु मैं वे कथ पाऊँ, वर्णित गीता में जो पाऊँ।
अन्य भक्तों के इष्ट अनेक, कामना से आसक्त प्रत्येक।
कामना से वें हों अभिभूत, ज्ञान से रहते सभी अछूत।
अपने अपने स्वभाव अनुसार, नियम पालें वे भिन्न प्रकार''।
पूछा पण्डित ''हे प्रभु सुजान, क्या ईश्वर को न उनका ध्यान।
बोले प्रभु पण्डितवर सुजान, प्रभु को सर्व सृष्टि का ध्यान।
जिस भी देव को जन ध्यावे, श्रद्धा उस की प्रभु बढ़ावे।

श्रद्धावान लाभ जो पावे, प्रभु ही उस को दे वह पावे''।
सुनी जब प्रभु की पण्डित बात, बोल उठा ''हे योगिवर तात।
ईश्वर की यह दया महान, सब भक्तों का राखे ध्यान।
प्रभु को क्यों न सभी ध्यावें, मन वाञ्छित फल उस से पावें''।
कहा प्रभु ''यही प्रथम बताया, माया ने है सबन भ्रमाया।

दो०- माया के वशिभूत हो, भूल जायें भगवान।
सृष्टि का जो कर्ता, हर्ता भी लो जान॥8029

अन्य देवों को पूज कर, फल पाते जो लोग।
नाशवान वे जानिये, सदैव रहें न भोग॥8030

कृष्ण चन्द्र भगवान थे, ईश्वर के अवतार।
स्पष्ट बात उन थी कही, सब शास्त्रों की सार॥8031

देवों को जो पूजते, मिलें देवों को जाय।
मुझ को जो हैं पूजते, मिलें मुझे ही आय॥8032

अव्यक्त हूँ मैं आ गया, व्यक्त रूप अब जान।
इस तथ्य को न जानते, मूढ़ बुद्धि इन्सान॥8033

योग माया से गुप्त, मम परम जो रूप।
कोई न पहचान सकत, मेरा सत्य स्वरूप॥8034

भूत काल मैं जानता, वर्तमान भी साथ।
भविष्य का भी ज्ञान है, मैं सृष्टि का नाथ॥8035

पुण्य कर्मों से नष्ट हों, जिन जनन के दोष।
द्वन्द्व मोह से छूट कर, मुझे भजें हमेश॥8036

यत्न शील हों जो जन, मम शरण में आय।
जरा मरण से मुक्ति हित, करें सदैव उपाय॥8037

ब्रह्म का उन्हें ज्ञान हो, प्रकृति का भी साथ।
अन्त समय वे देखते, मुझ को अपने साथ''॥8038

पण्डित पूछा नाथ से, ब्रह्म क्या है मीत।
जिस की चर्चा कृष्ण की, लूँ मैं वह भी चीत''॥8039

प्रभु जी ने तब उसे बताया, ''ब्रह्म शब्द को सुन तुम पाया।
'अक्षरब्रह्म' उस को लो जान, अगले पाठ में पाओ ज्ञान''।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'ज्ञान-विज्ञान योग' नाम - सातवां अध्याय

नोट : गीता के अनुसार प्रकृति के दो भेद 'अपरा' और 'परा' -
'अपरा' आठ प्रकार की -
1. भूमि 2. जल 3. अग्नि 4. वायु 5. आकाश 6. मन 7. बुद्धि 8. अहंकार
'परा प्रकृति' - जीवात्मा
सांख्य के अनुसार प्रकृति के 25 तत्व
क) पांच महाभूत - पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश
ख) पांच तन्मात्र - गन्ध, रस, रूप, स्पर्श, अहंकार
ग) दस इन्द्रियां-श्रोण, त्वचा, चक्षु, रसना, नासिका, वाक, पाणि, पाद, उपस्थ, पायु
घ) एक काल
कुल संख्या - पच्चीस तत्व।

आठवां अध्याय

'अक्षरब्रह्म योग'

गीता ब्रह्म का रूप बताये, उस का कर्म स्वभाव कथ पाये।
[1]'ब्रह्म' सदा इक रूप रह पाये, 'अक्षर' वह इस लिए कहाये।
परम पुरुष उस को ही जान, उस से परे न कुछ भी मान।
आत्मा उस का [2]स्वभाव बताया, क्यों कि आत्मा उस से जाया।
ब्रह्म का कर्म जानो यह मीत, सृष्टि रचना जो है चीत।
अन्त समय जो उसे ध्यावे, ब्रह्म ही में वह जन समावे।

दो०- पण्डित पूछी बात इक, प्रभु जी से उस काल।
''स्मरण जो ब्रह्म को न करे, हो क्या उस का हाल''॥8040

प्रभु जी पण्डित को बतलाया, गीता में जो स्पष्ट कथ पाया।
''अन्त समय जो मति हो मीत, वही गति जन की लो चीत।
योग युक्त जन सदा रह पावे, एकाग्र मन से ब्रह्म को ध्यावे।
ब्रह्म में ही वह जन समाता, परम पुरुष को इस विध पाता।
परम पुरुष का जानो रूप, सर्वज्ञ अनादि है स्वरूप।
नियन्ता सर्व सृष्टि का जानो, सूक्ष्म से भी सूक्ष्म मानो।
सब का धारण पोषण करता, जग का कर्ता और संहरता।

---

1. क्षर - नश्वर देखें गीता 15.16 अक्षर - अनश्वर
2. स्वभाव - स्व (अपने से) भाव (उत्पन्न हुआ)

अचिन्त्य उस का जानो रूप, सूर्य सम प्रकाश स्वरूप।
अविद्या से अति परे है भाई, 'सच्चिदानन्दघन' शुद्ध कहाई''।
पूछा पण्डित ''किस विध ध्यावें, अन्त समय जो ब्रह्म समावें''।
कहा प्रभु ''मैं वह बतलाऊँ, गीता में जो लिखा है पाऊँ।

दो०- अन्त समय जिमि ध्यान हो, उस का किया बखान।
निश्चल करे जन चित्त को, करे श्रद्धा से ध्यान॥8041

स्थित करे निज प्राण को, भ्रुवों मध्य लो जान।
परम पुरुष को प्राप्त करत, कथन किया भगवान॥8042

संयमित करे नवद्वार सब, [1]हृदय में मन लाय।
योग धारणा में स्थित रहे, मूर्धा में प्राण समाय॥8043

मन्त्र जप हो ओम् का, करें ब्रह्म स्मरण।
त्यागे इस विध प्राण जो, हो परम गति का वरण''॥8044

कहा पण्डित ''हम लेवें जान, कठिन साधना यह भगवान।
यह तो सब के न वश की बात, सरल साधन क्या नहीं है तात।
कहा प्रभु मैं तुझे बताऊँ, सरल साधन जो है सुनाऊँ।
कृष्ण चन्द्र जी यह बतलायें, अनन्य चित्त जो प्रभु ध्यायें।
नित्य निरन्तर करे स्मरण, वह भी करता वही पद वरण।
प्राप्त करत जो यह इस्थान, उस का जन्म न होय जहान।

---

1. हृदय - मेरु दण्ड

ब्रह्म लोक तक लोक सब जान, आवागामी हैं वे मान।
ब्रह्मपद को जो जन पावे, जन्म मरण में न फिर आवे''।

दो०- कहा पण्डित ब्रह्मलोक की, बात कही इस साथ।
ब्रह्मलोक में काल का, क्या हिसाब है नाथ॥8045

कहा प्रभु ''मैं तुझे बताऊँ, गीता में जो है समझाऊँ।
'ब्रह्मलोक' का दिन बताऊँ, 'ब्रह्मलोक' की रात जताऊँ।
सहस्त्रयुग का दिन वहां जान, सहस्त्र युग की रात भी मान।
दिन में सृष्टि होती मीत, रात में प्रलय होती चीत।
सृष्टि का यह चक्र भाई, और यही प्रलय कहाई।
'ब्रह्म' सृष्टि से भिन्न पहचानो, उस का नाश कभी न मानो।
'अव्यक्त' व 'अक्षर' वह है भाई, परम गति वह सुख प्रदाई।
उसे प्राप्त जो जीव कर पाये, जन्म मरण में बहुर न आये।
परम पुरुष को वह ही पावे, अनन्य भक्ति जो जन अपनावे।

दो०- इस प्रकार ही जीव की, दो गतियां हैं मीत।
एक को 'आवृत्ति' मान, 'अनावृत्ति' दूजी चीत॥8046

[1]''उत्तरायण' में जो जन जायें, लौट न जग में फिर वे आयें।
योगी जन उत्तरायण से जाये, सहस्त्रार उत्तरायण कहलाये।
वहां प्रकाश प्रचण्ड है भाई, उस प्रकाश में जीव समाई।

---

1. देह में उत्तरायण का भाव है शरीर के ऊपर के चक्र - आज्ञाचक्र, सहस्त्रार दल कमल।
देह में दक्षिणायण का भाव है शरीर के नीचे के चक्र -मूलाधार आदि।

सहस्त्रार से अधम स्थान, दक्षिणायन उस को लो जान।
उस मार्ग से जो योगी जाय, लौट जगत में फिर वह आय।
वहां पर दीखे मध्यम प्रकाश, धूमिधूस्त्रित जिमि आकाश।
शुक्ल व कृष्ण जो गति बतायीं, संक्षेप से गीता में समझायीं।
जो योगी यह गतियां जाने, जग के मोह वह नहीं भ्रमाने।
सतत काल वह योग में लागे, उत्तरायण में सदा वह पागे।

दो०- वेद पाठ व यज्ञ से, दान आदि से मीत।
जो फल जन को मिलत है, वह तो छोटा चीत॥8047

योग साधन से जो मिलत, उस समान न अन्य।
परम पद को प्राप्त करत, 'ब्रह्मलीन' जन धन्य॥8048

छः मास उत्तरायण की, समाधि जो लगाय।
परमपद को प्राप्त कर, ब्रह्म में वह समाय॥8049

छः मास दक्षिणायन में, समाधि जो लगाय।
लौट जगत में आत वह, गीता यही बताय''॥8050

[1]कहा पण्डित मैं धन्य हूँ, ज्ञान मिला नवीन।
मैं तो भ्रम में था पड़ा, शब्द जाल में लीन॥8051

योगिवर एक बात बतायें, यह मार्ग न सहज हम पायें।

---

1. गीता के 8.24-26 श्लोकों की व्याख्या में मैं उलझा हुआ था। अब मुझे ठीक ज्ञान मिला है कि उत्तरायण आदि का भाव क्या है।

परम पद को पाने हेत, सुगम मार्ग क्या हो अभिप्रेत।
कहा प्रभु जो प्रश्न कर पाया, मेरे मन में भी था आया।
गीता जनता का है ग्रंथ, सुगम चाहिए जन गण को पंथ।
अगला पाठ यही बतलाये, सुगम मार्ग वह क्या हो पाये।
आओ अगले पाठ को देखें, भगवान के उपदेश को पेखें।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'अक्षर-ब्रह्म योग' नाम - आठवां अध्याय

नवम अध्याय

'राज विद्या-राजगुह्य योग'

दो०- राज विद्या का योग, है गुह्यतम मीत।
अशुभ कर्मों से मुक्त हो, इस पर चल सप्रीत॥8052

इस पर चलना सुगम लो जान, मिलता फल प्रत्यक्ष लो मान।
सोपान इस के पांच हैं भाई, सुगम सभी पर गूढ़ कहाई।
प्रथम सोपान श्रद्धा का मीत, दूजा प्रभु सर्वव्यापक चीत।
तीजा नित्य युक्त जन होय, चौथा कर्म प्रभु अर्पित होय।
पंचम अनन्य भाव से भक्ति, अन्य कहीं भी न आसक्ति।
इन पांचों का समन्वय जान, 'राज विद्यायोग' पहचान।
कहा पण्डित मम मन में आये, राज विद्या यह क्यों कहलाये।
कहा प्रभु यह नाम पहचानो, राजमार्ग सम योग यह जानो।

दो०- राज मार्ग पर चल सके, जन साधारण मीत।
राज विद्या का योग यह, सभी का है लो चीत॥8053

कहा पण्डित यह तो मैं जाना, 'गुह्य' योग इसे क्यों माना।
कहा प्रभु तव प्रश्न यह भाई, नाम में है रहस्य समाई।
राज विद्या वह योग सिखाये, प्रेम प्रभु से अनन्य हो पाये।
प्रेमियों का हो नाता जोय, भक्ति का भी होता सोय।
गुप्त नाता यह जानो भाई, प्रकट होय तो पड़े खटाई।

कहा पण्डित मैंने अब जाना, इस नाम का रहस्य पहचाना।
इस योग के पांच सोपान, उनका भी अब दीजो ज्ञान।
कहा प्रभु हम करें बखान, इस योग के सभी सोपान।
उनमें अलौकिक है विज्ञान, कृष्ण चन्द्र स्वयं कीन बखान।
श्रद्धा का जो प्रथम सोपान, वह तो योग की होवे जान।

प्रथम सोपान

दो०- श्रद्धा के ही कारणे, भक्ति में हैं प्राण।
श्रद्धा हीन जो भक्ति हो, जानो वह निष्प्राण॥8054

भक्ति गुप्त ज्ञान है, रहस्यमयी यह जान।
जिस के चित्त बसत यह, सकत वही पहचान॥8055

योग मार्ग पर जो चले, और न श्रद्धा होय।
ईश्वर को न पा सकत, जन्म मरण को गोय॥8056

योग वह किस काम का, जन्म मरण ले जाय़।
योग उस को जानिये, श्रद्धा से प्रभु ध्याय॥8057

दूसरा सोपान

सोपान दूजा अब कहूँ, सर्वव्यापक नाथ।
देखे कण कण में उसे, योगी वही सनाथ॥8058

ईश्वर का न रूप है, ले योगी यह जान।
उस की रचना है जगत, ईश सर्वत्र मान॥8059

ईश्वर कण कण में रहे, रिक्त न कोई स्थान।
ईश्वर सब में बसत है, न ईश्वर में कुछ जान॥8060

ईश्वर के सभी भूत हैं, वह सब का आधार।
फिर भी उन में न रहे, अलौकिक यह विचार॥8061

आकाश में जिमि वायु जानो, नित्य स्थित सर्वत्र मानो।
ऐसे भूत पदार्थ सब जान, ईश्वर में स्थित सारे मान।
सकल भूत जो प्रकृति माहिं, प्रकृति में प्रलय काल समाहिं।
ईश्वर उन्हें पुनः उपजाये, जब कल्प का आरंभ हो पाये।
ईश्वर बार बार बनाये, प्रकृति से सब भूत उपजाये।
प्रकृति का यह कर्म लो जान, ईश्वर कर्ता लेवो मान।
उदासीनवत् ईश्वर जानो, सब कर्मों में उस को मानो।
ईश्वर को अध्यक्ष लो मान, कर्ता प्रकृति को लेवो जान।
पुनः पुनः यही चक्र जानो, क्षय निर्माण जगत का जानो।

दो०- इस प्रसंग में कृष्ण ने, पुनः कही वह बात।
सृष्टि कर्ता मैं खुद हूँ, मुझे पहचानो तात॥8062

मैं भूत महेश्वर, आऊँ जब तन धार।
मूढ़ नहीं पहचानते, नहीं करते सत्कार॥8063

मूढ़ पुरुष वे जगत में, मूढ़ ही उन का चित्त।
मूढ़ ही उन की बुद्धि है, व्यर्थ ज्ञान है मित्त॥8064

राक्षसी उन की बुद्धि है, है आसुरी स्वभाव।
प्रकृति उन की मोहिनी, ज्ञान का पूर्ण अभाव॥8065

उन विपरीत जो हों जन, प्रकृति दैवी के जान।
अनन्य मन से भजन करें, मुझ को ईश्वर मान॥8066

सर्वव्यापक ईश्वर, कर्ता भर्ता सोय।
'राजविद्या' का जानिये, सोपान दूजा होय॥8067

उस भाव से सिमरता, ईश्वर को जो मीत।
राज विद्या का मार्ग, उस को है प्रतीत॥8068

तीसरा सोपान

सोपान तीजा अब कहें, इस विद्या का मीत।
लौकिक इच्छा त्याग कर, नित्य युक्त सप्रीत॥8069

भजन करे निरन्तर, दृढ़ व्रत को धार।
नमन करे प्रभु को सदा, मन प्रेम अपार॥8070

जिस विध भी प्रभु को भजे, प्रभु को वह स्वीकार।
चाहे मार्ग ज्ञान का, चाहे रूप साकार॥8071

भक्ति के विध अनेक कथे, गीता में भगवान।
वे सभी स्वीकार हैं, योगी लेवे जान॥8072

प्रभु की करे उपासना, अनन्य चित्त से जोय।
नित्य युक्त जन हो रहे, पाय दया जन सोय॥8073

किसी भी देव को जन भजे, श्रद्धा सहित लो जान।
देवें फल उस भक्ति का, स्वयं उसे भगवान॥8074

देवों का जो भजन करे, जाय देवों के पास।
भजन प्रभु का जो करे, जाय प्रभु के पास॥8075

जिस विध भी जन भजन करे, करे निरन्तर सोय।
नित्य युक्त हो कर रहे, योगी जन वह होय॥8076

लौकिक इच्छा त्यागनी, इस योग का नेम।
लौकिक इच्छा से भजे, न उस मन प्रभु से प्रेम॥8077

यज्ञादि जो कर्म करे, इच्छा मन में धार।
इच्छा पूर्ण होय पर, छूटत न संसार॥8078

स्वर्ग में भी जा बसे, फिर लौटें संसार।
आवागामी रहत वे, स्वेच्छा के अनुसार॥8079

चौथा सोपान

'राज विद्या' का तीजा, सोपान था यह मीत।
सोपान चौथा योग का, करें वर्णन सप्रीत॥8080

प्रभु समर्पित सब कर्म, करे योगी जन जोय।
राज विद्या के योग पर, जानो चलता सोय॥8081

सोपान चौथा याद रहे, जो अभ्यासी होय।
भूल जाय न कभी इसे, मुक्ति को तब गोय॥8082

आत्म समर्पण वह करे, ईश्वर को मम मीत।
स्मरण करे भगवान को, कर एकाग्र चीत॥8083

स्वीकार करें उस का प्रभु, समर्पित करे वह जोय।
पत्र पुष्प फल तोय भी, ग्रहण करें जो होय॥8084

जो भी करता कर्म वह, खाना पीना आद।
यज्ञ आदि भी जो करे, हो अर्पित प्रभु पाद॥8085

अर्पित प्रभु के सब कर्म, ऐसा योगी जोय।
वही योगी सन्यासी, मुक्ति को वह गोय॥8086

प्रभु को तो सब जगत, लागे एक समान।
न किसी से द्वेष है, न प्यार भी जान॥8087

परन्तु जो जन इस विध, अर्पित प्रभु के होय।
उस में तो प्रभु बसत हैं, वह भी प्रभु में होय॥8088

दुराचारी भी जन होय, अनन्य भाव से भक्त।
साधु ही वह जानिये, प्रभु चरणि आसक्त॥8089

शीघ्र होय धर्मात्मा, परम शांति को पाय।
यह तो निश्चित बात है, भक्त रक्षा को पाय॥8090

प्रभु की होंय जो शरण में, कैसे भी जन होंय।
प्रभु कृपा से सभी जन, परमगति को गोंय॥8091

यह चतुर्थ सोपान था, राज विद्या का मीत।
सोपान पञ्चम में कही, बात निश्चित इक चीत॥8092

पंचम सोपान

उस बात को ग्रहण कर, अनन्य भक्त जो होय।
पा सके वह ब्रह्म को, वह ब्रह्म ही होय॥8093

पण्डित पूछी प्रभु से, वह कौन सी बात।
ब्रह्म ही वह जन भये, जो गहे वह तात॥8094

कहा प्रभु सुन ध्यान से, गीता जो कथ पाय।
यह इक गुह्य बात है, जो इस पर चल पाय॥8095

अवश्य ब्रह्म को पात है, ब्रह्म वह हो जाय।
अलग ब्रह्म से न रहे, ब्रह्म में ही समाय॥8096

बात इसी में जानिये, राज विद्या का ज्ञान।
मन प्रभु में लीन हो, वह भक्त प्रभु का जान॥8097

यजन करे वह प्रभु का, नमन प्रभु को होय।
प्रभु परायण जन रहे, क्यों न प्रभु को गोय॥8098

अन्तिम सोपान जान लो, सार रूप में ज्ञान।
'राज विद्या' 'राज गुह्य', दोनों एक ही जान॥8099

कहा पण्डित मैं बहुत, आप से पाया ज्ञान।
सार रूप से प्राप्त करे, ब्रह्म को जिमि जहान॥8100

आज्ञा हो तो मैं कहूँ, जो सुना भगवान।
गुह्य ज्ञान का सार मैं, जितना पाया जान॥8101

'राज विद्या राज गुह्य', भक्ति का यह योग।
गुह्य रूप जो भक्ति करे, सफल उसी का योग॥8102

प्रथम सोपान में बतलाया, सर्वव्यापक ईश जताया।
उस रूप में ब्रह्म जो देखे, गीता योगी उसे उलेखे।
कण कण में है ब्रह्म का वासा, यह योगी का दृढ़ विश्वासा।
कह सके न कोई यह बात, यहां प्रभु का वास नहीं तात।
प्रभु सर्वत्र इमि समाया, वायु में जिमि अकाश बताया।
इस विध जो प्रभु को ध्यावे, ब्रह्म ज्ञानी वह हो जावे।
भक्ति में हो इमि रंगराता, आकाश में जिमि ब्रह्म समाता।
प्रभु भक्ति जो न कर पाये, बार बार जग लौट के आये।

दो०- मोक्ष पाने के हेत जन, प्रभु को ही वह ध्याय।
अनन्य न जिस का भाव हो, लौट जगत में आय॥8103

द्वितीय सोपान में बतलाया, कर्ता भर्ता प्रभु जतलाया।
विश्व सकल प्रभु रच पाया, रच कर भी निर्लेप बताया।
प्रकृति से प्रभु रचा जहान, रचनहार निर्लेप लो मान।
प्रभु के आश्रित प्रकृति सारी, बात कही पर एक न्यारी।
प्रकृति प्रभु में नहीं समाये, उस से प्रभु निर्लेप रह पाये।
आकाश में जिमि वायु समाये, प्रभु के आश्रित विश्व कहाये।
कर्ता हर्ता प्रभु को जानो, उदासीन वत रहत पहचानो।

इस रूप में प्रभु को ध्यावे, भक्त शिरोमणि वही कहावे।

दो०- मोक्ष लाभ के हेत जन, प्रभु को अवश्य ध्याय।
अन्यथा जानो वह जन, जन्म मरण में आय॥8104

तीजा सोपान जो कथ पाया, नित्य युक्त रहे भक्त बताया।
नित्य युक्त उसे कह पायें, निरन्तर प्रभु के गुण जो गायें।
नमन करें प्रभु को प्रतिपल, भूलें नहीं प्रभु को इक पल।
किसी रूप में प्रभु को ध्यावें, फल तो प्रभु से ही वे पावें।
नित्य निरन्तर प्रभु को ध्यावें, योग क्षेम वे प्रभु से पावें।
योगिराज जो सुन मैं पाया, क्या स्मरण मुझे ठीक रह पाया।
कहा प्रभु हे पण्डित भाई, ठीक बात तुम समझ है पाई।
योग सोपान यही कह पायें, प्रभु का आश्रय भक्त ग्राहें।
ब्रह्म प्राप्ति का सरल उपाय, गीता में यह कथन में आय।
अगले सोपान में क्या है आया, बतलायें जो स्मरण रह पाया।

दो०- सोपान चतुर्थ मैं कहूँ, कथी पण्डित ने बात।
विलक्षण उस में ज्ञान है, मैं समझा जो तात॥8105

चतुर्थ सोपान यह बतलाये, प्रभु अर्पित जन कर्म कर पाये।
करे भक्त जो जैसा काम, प्रभु को समर्पित करे तमाम।
खान पान वा यज्ञ हो जोय, समर्पित प्रभु के ही हो सोय।
यह सन्यास का ही है रूप, इस से मोक्ष मिले अनूप।
कर्म बन्धन से जन हो मुक्त, इस विध रहे जो योग में युक्त।
प्रभु तो रक्षारूप भगवान, दें पापिन को भी भक्ति दान।

दुराचारी भी जन जो होय, प्रभु भक्ति यदि करता सोय।
वह भी सदाचारी हो जाये, और प्रभु की शरण ग्राहे।
कैसी कृपा प्रभु की भाई, जग हित देवें ज्ञान सुखदाई।
कौन जन जिस में नहीं पाप, बताया कृष्ण यह मार्ग आप।
हर इक को बंधाई आस, योग पै होय जिमि विश्वास।
योगिवर मुझे इतना याद, अगला सोपान कथूँ इस बाद।

दो०- सोपान पंचम मैं कहूँ, योगिवर हे तात।
मैं तो हूँ धन्य भया, कर के तव साक्षात॥8106

सोपान पंचम में कहा, सोपान सर्व का सार।
एक भक्ति भगवान की, करती भव से पार॥8107

प्रभु में ही मन रमे, भक्ति प्रभु की होय।
प्राप्त प्रभु को जन करत, प्रभु परायण जोय॥8108

इतनी बात सुनाय कर, पण्डित कीन अरदास।
योगिवर मेरे चित्त में, है कुछ और जिज्ञास॥8109

कहा प्रभु वह कथ दो भाई, जो तुम्हारे मन में आई।
कहा पण्डित मम मन में आय, 'गुह्य योग' यह क्यों कहलाय।
कहा प्रभु यह तेरी बात, इस में छिपा रहस्य है तात।
गीता न यह स्पष्ट बताये, जिज्ञासु स्वयं समझ ही पाये।
गुह्य बात गुप्त रख पाई, रचनहार की यह चतुराई।
संकेत से ही पाठक जाने, लेखक का वह भाव पहचाने।

भक्ति को जन गुप्त रख पाये, उसको न वह प्रकट दिखाये।
गुह्य योग का यही संकेत, भक्ति प्रकट न हो किसी हेत।

दो०- एक बात है और भी, इस नाम में जान।
सतर्क किया है सबन को, कृष्ण चन्द्र भगवान॥8110

भक्ति योग का नाम लेय, चले मत अनेक।
भक्ति होय न विशेष कुछ, लें स्वार्थ की टेक॥8111

ले ईश्वर का नाम वे, चलायें सम्प्रदाय।
योग का वहां कुछ नहीं, ऐसे संप्रदाय॥8112

प्रकट करें बहु भक्ति वे, राखें इसे न गुप्त।
इसी कारण से था भया, योग जगत से लुप्त॥8113

कहा पण्डित मैं जान गया, यह रहस्य की बात।
प्रश्न और है चित्त में, वह भी कह दूँ तात॥8114

कहा पण्डित हे योगिराज, मार्ग सरल यह कहा महाराज।
भक्त के लिए न सरल यह होय, लालसा दर्शन की जिसे होय।
सर्वव्यापक भगवान बताया, कण कण में जो सर्वत्र समाया।
सर्वत्र तो आकाश दिख पाये, भगवान तो कहीं नज़र न आये।
भगवान यदि सर्वत्र होय, कहीं तो दृष्टि गत वह होय।
आकाश में देख देख मैं हारा, उस का तो है नहीं किनारा।
कहीं राम न मुझे दिख पाया, क्या दर्शन का न और उपाया।
गीता आप ने सभी सुनाई, जिज्ञासा मेरी न मिट पाई।

ऐसा योग मुझे बतलायें, राम के दर्शन मुझे करायें।
दर्शन बिन तो ज्ञान अधूरा, दर्शन कराये वही गुरु पूरा।
योगिवर वह योग बतायें, प्रभु दर्शन जिस विध हो पायें।
सुन पण्डित की ऐसी उक्ति, कहा प्रभु मैं कहूँ वह युक्ति।
गीता में वह कृष्ण बतलाई, बहु भक्तों ने है अपनाई।
कहा पण्डित वह क्या है रीत, सुनूँ मैं तुम से हो दत्तचीत।
कहा प्रभु मैं क्या बतलाऊँ, गीता में जो वह कथ पाऊँ।

दो०- अगला पाठ इस के लिए, पढ़ेंगे पण्डितवर्य।
सुन बतलाना क्या भया, सिद्ध तेरा तात्पर्य॥8115

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'राज विद्या राज गुह्य योग' नाम
- नवम अध्याय

दशम अध्याय

'विभूति योग'

दो०- प्रभुवर ने इस पाठ में, कही पण्डित से बात।
गीता में जो है लिखा, कथन करूँ मैं तात॥8116

ईश्वर को जो देखन चाहे, गुण ईश्वर के सन्मुख लाये।
देवों से था पूर्व भगवान, महर्षियों से भी पूर्व जान।
इस विध प्रभु को जान जो पाता, सर्व पापों से मुक्त हो जाता।
ईश्वर से सब गुण उपजाये, बुद्धि, ज्ञान, असंमोह हैं आये।
दम-शम, सत्य-क्षमा जो भाई, सुख दुःख, भाव अभाव कहाई।
भय-अभय, अहिंसा-समता जान, ईश्वर से उत्पन्न सब गुण मान।
सप्तऋषि और मनु जो चार, जिन से प्रजा का भया विस्तार।
मानसिक सृष्टि प्रभु की जानो, स्वरूप प्रभु का इमि पहचानो।
ऐसा जन योगी हो जाये, और प्रभु को जानन पाये।
प्रभु से ही सब कुछ उपजाया, जिस के मन यह दृढ़ समाया।
भाव सहित वह प्रभु को ध्यावे, पूर्ण ज्ञानी भी हो जावे।

दो०- पूर्ण ज्ञानी जन भये, इस विध प्रभु को जान।
योगी भी वह सिद्ध होय, कहें कृष्ण भगवान॥8117

पूर्ण ज्ञानी भजे भगवान, भाव सहित वह लेवो जान।
ज्ञानी के चित्त प्रभु समाये, प्राणों में भी वह समाये।

वाणी से प्रभु प्रभु कथ पाये, परम संतोष उस के मन आये।
इस विध सतत रहे जो युक्त, योगी जानो जग से मुक्त।
प्रभु की दया उन्हीं पै होय, अन्धकार का नाश विगोय।
ज्ञान दीप से प्रकाशित चित्त, प्रभु कृपा से जानो मित्त।
ऐसा ज्ञान जिस के चित्त आये, सर्वत्र प्रभु को वह लख पाये।
सर्व जगत में प्रभु दिख पाये, विशेष रूप से कहीं दिख पाये।
सुन पण्डित फिर कही उस बात, विशेष रूप कहां होता तात।
विशेष रूप क्या होवे मीत, जिस में प्रभु की होय प्रतीत।

दो०- सुन पण्डित की बात को, बोले प्रभु दयाल।
कृष्ण चन्द्र ने जो कहा, वही कहूँ इस काल॥8118

विशेष गुण जहां भी दिख पाये, विभूति प्रभु की वह कहाये।
ऐसी विभूतियां हैं अनेक, उन को देख सके हर एक।
देख विभूति होवे ज्ञान, लिया है प्रभु को हम पहचान।
कहा पण्डित यह खोल बतायें, विभूतिन के कुछ नाम सुनायें।
कहा प्रभु गीता कथ पाये, विभूतिन का तां अन्त न आये।
ईश्वर का विस्तार ~~क्या~~ बेअन्त, तिमि हैं विभूतियां भी अनन्त।
गीता में जो हैं लिख पायीं, वही कथूँ मैं तुम को साईं।
धैर्य से सुनते जाओ मीत, उनमें निरखो प्रभु सप्रीत।
देवों में विष्णु लेवो जान, ज्योतियों में सूरज पहचान।
मरुतों में है मरीचि भाई, शशि नक्षत्रों में कहलाई।
पित्रों में अर्यमा लो जान, संयमों में यम लो पहचान।
महर्षियों में भृगु को देख, चित्ररथ गन्धर्वों में पेख।

वृक्षों में अश्वत्थ महान, देवर्षियों में नारद जान।
दैत्यों में प्रह्लाद है भाई, कपिल सिद्धों में कहलाई।
मुनियों में व्यास लो जान, उशना कवियों में पहचान।
शस्त्राधारियों में है राम, वृष्णियों में तो खुद हूँ शाम।
पाण्डवों में अर्जुन को देखो, हाथियों में ऐरावत पेखो।
मृगादियों में मृगेन्द्र सोहे, मनुष्यों में नराधिप होये।
गरुड़ पक्षियों में है मीत, मकर झषाओं में लें चीत।

दो०- ईश्वर को हो देखना, लो विभूतिन पेख।
विभूतिन का न अंत है, लेत जिज्ञासु देख॥8119

कुछ विभूतिन और हैं, लो पण्डितवर जान।
ब्रह्मा भी न गिन सकत, सकल विभूतिन मान॥8120

नक्षत्रों में चांद पहचान, वेदों में सामवेद को मान।
देवों में इन्द्र देव है भाई, इन्द्रियों में तो मन कहाई।
चेतना प्राणियों में पहचान, रुद्रों में लो शङ्कर जान।
राक्षसों में कुबेर ही होये, पुरोहितों में बृहस्पति सोहे।
सेनापतियों में स्कन्द कहाय, सागर तो नदियों में सुहाय।
यज्ञों में जप यज्ञ है माना, हिमालय स्थिर वस्तुन में जाना।
चित्ररथ गंधर्वों में आया, घोड़ों में उच्चश्रव सुहाया।
शस्त्रों में वज्र का है नाम, गौओं में धेनु का है काम।
वासुकी सर्पों में प्रधान, नागों में अनंत लो जान।
अर्यमा पितरों में पहचान, यम को शासकों में लो जान।

दो०- ईश्वर की विभूतियां, जानो ये सब मीत।
इन में जो विशेषता, ईश्वर से लो चीत॥8121

गहराई से इन को देखो, गुण विशेष तुम इन में पेखो।
विशेष इन में गुण पहचानो, तेजांश ईश्वर का मानो।
ईश्वर को यदि देखन चाहो, उन तेजांशों में तुम पाओ।
और विभूतियां करें बखान, उनमें यह तेजांश लो जान।
दैत्यों में प्रह्लाद को जान, 'काल' को गणना मध्य पहचान।
सृष्टि का जो आदि और अन्त, शक्ति उस में ईश बे-अन्त।
नदियों में गंगा को देखो, विद्याओं में अध्यात्म पेखो।
वाद विवाद में निर्णय देख, अक्षरों में ओंकार तू देख।
समासों में हैं द्वन्द्व समास, कालों में तो काल है [1] खास।
मृत्यु है सर्वनाश में मीत, भविष्य ईश्वर से लो चीत।

दो०- हर स्थान में जान लो, इस विध ईश्वर अंश।
विभूतिन से प्रतीत हो, ईश्वर का तेजांश॥8122

स्त्रियों में होय देखनी, ईश्वर की विभूति।
'स्मृति' 'मेधा' और 'क्षमा', और उनके संग 'धृति'॥8123

सामवेद में देख लो, 'बृहत्साम' विभूति।
छन्दों में है 'गायत्री', होय सबन प्रतीति॥8124

---

1. काल खास - महा काल

मासों में 'मार्गशीर्ष' है, ऋतुओं में 'बसन्त'।
धोखाधड़ी में 'जूआ', जिस में सत का अन्त॥8125

हुआ ईश्वर से प्रकट, भला बुरा लो जान।
बिन ईश्वर के नहीं कुछ, लो जगत में मान॥8126

ईश्वर को हो देखना, हर चीज़ में देख।
देखो गंदगी में तुम, अमृत में भी पेख॥8127

कहा पण्डित हे योगी भाई, तुम तो स्पष्ट बात कथ पाई।
गीता का तुम सार पहचाना, मैं तो आज तुझी से जाना।
तुम ने गीता कीन सुगीत, स्पष्ट बात कह दी हर रीत।
और विभूतियां यदि हों भाई, वे भी सुनूँ मैं ध्यान लगाई।
कहा प्रभु मैं और बतलाऊँ, जो है गीता में कथ पाऊँ।
पराक्रमी में विजय लो जान, सत्वभाव सात्विकों में मान।
दण्डशील में दण्ड वह होय, नीतिवान में नीति है सोय।
गुह्य बातों में मौन हो मीत, नीतिवानों में लो नीति चीत।

दो०- बीज सम्पूर्ण विश्व का, ईश्वर उस को जान।
चराचर जग में जो कुछ, उस में ईश पहचान॥8128

विभूतिन का तो अन्त न, है कहीं भी साईं।
संक्षेप से हि है कथा, जो गीता के माहिं॥8129

विभूतिमत सत्व जोय, श्रीमत व जो होय।
ईश्वर के ही तेज से, प्रकट भया है सोय॥8130

इसी बात से जान लो, ईश्वर का स्वरूप।
अंश एक से हर जगह, प्रकटा उस का रूप॥8131

सुन पण्डित संतोष जताया, और कहा है ज्ञान बहु पाया।
मेरी लालसा पर अधूरी, सर्वव्यापक करे न पूरी।
मैं राम के दर्शन चाहूँ, नहीं विभूतिन से प्रत्याऊँ।
कहा प्रभु यदि यही है बात, पाठ सुनो तुम अगला तात।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'विभूति योग' नाम - दशम अध्याय

नोट : - भगवान की विभूतियों में 'उशना' कवि को भगवान की विभूति माना गया है। 'उशना कवि' (गीता 10.37) अवश्य ही महान कवि होगा जिस का उल्लेख केवल यहां पर गीता में ही भगवान की विभूतियों में मिलता है, अन्यत्र नहीं। इस कवि की कोई रचना इस समय उपलब्ध नहीं। संभवतः भविष्य में कहीं से प्राप्त हो जाये।

ग्यारहवां अध्याय

'विश्वरूपदर्शन योग'

दो०- यह अध्याय महान है, इस ग्रंथ में जान।
प्रकट किया जब कृष्ण ने, अपना स्वरूप महान॥8132

अर्जुन ने भगवान से, स्पष्ट कही थी बात।
चाहूँ दर्शन ईश का, प्रत्यक्ष रूप में तात॥8133

संभव है यदि देखना, ईश्वर का वह रूप।
दिखला सको दिखला दो, विधाता का वह रूप॥8134

चैलेंज था यह कृष्ण को, अर्जुन का मम मीत।
पण्डित सुनिये ध्यान से, कृष्ण वचन सप्रीत॥8135

कृष्ण ने स्वीकार किया, दिखलाना वह रूप।
सकल जगत जिस में दिखे, दिव्य निज स्वरूप॥8136

देव सभी जिस में रहें, चराचर वा लोक।
पूर्व न देखा जो कभी, किसी था इस लोक॥8137

अर्जुन को तब कृष्ण बताया, ईश्वर रूप जो तुम कथ पाया।
लौकिक आँख से न देखे कोई, देख सके दिव्य आँख जो होई।
दिव्य आँख तुझे दे पाऊँ, और तुझे वह रूप दिखाऊँ।

ऐसा कह कृष्ण भगवान, दिव्य दृष्टि का दीना दान।
अर्जुन देखा जो तब रूप, वर्णन सकत नहीं हो स्वरूप।
विराट रूप में ईश्वर देखा, अनेक मुख युक्त उस को पेखा।
अनेकों नेत्र उस में पाये, दिव्य भूषणों से रूप सुहाये।
दिव्य मालायें दिव्य वस्त्र धारे, दिव्य लेप तन में था सारे।
थी उस रूप की सीमा नाहीं, रूप विराट कथन में आहीं।
सूर्य हज़ारों उदय आकाश, होय सभी का जो प्रकाश।
वह प्रकाश उस के सम नाहीं, विराट रूप का तेज जो आहीं।

दो०- अर्जुन देखा उस रूप में, सर्व जगत हे मीत।
निज निज कर्मों में सभी, थे लागे सप्रीत॥8138

कहा पण्डित हे योगी प्यारे, मेरे चित्त कुछ संशय भारे।
दिव्य दृष्टि जो अर्जुन पाई, वह क्या होती समझ न आई।
उस दृष्टि को किमि जन पाये, यह भी न मम समझ में आये।
आप तो योगी हैं महाराज, यह बात समझाएं आज।
कहा प्रभु हे पण्डित भाई, कभी किसी के न यह मन आई।
तुम ने जो प्रश्न कर पाया, जग हित ही यह मन तव आया।
मन की तीन अवस्था जानो, जागृत, स्वप्न, सुषुप्ति मानो।
जागृत में जन बाहिर देखे, स्वप्न में निद्रा में कुछ पेखे।
सुषुप्ति में कुछ नज़र न आये, तीन अवस्था शास्त्र बतलाये।
चौथी अवस्था और लो जान, तुरिया अवस्था वह पहचान।
इन तीनों में जो भी होये, तन मन बुद्धि करतीं सोय।
तुरिया अवस्था वह पहचान, मन बुद्धि का कुछ कर्म न मान।

वहां तो आत्मा रहे निज रूप, कर्म करे वह स्वयं अनूप।
आत्म अवस्था वह कहलाये, आत्मा स्वयं ही सब कर पाये।
आत्मा देखे आँख बिन मीत, तन मन बुद्धि वहां न चीत।
उस अवस्था को वह ही पाये, दिव्य दृष्टि जो गुरु से पाये।

दो०- दिव्य दृष्टि जभी मिले, तन मन होय अलग।
केवल तब ही आत्मा, अपने मांझ सलग॥8139

कहा पण्डित योगिवर भाई, मेरी समझ अभी न आई।
आँख बिना किमि आत्मा देखे, दिव्य दृष्टि से जो उल्लेखे।
कहा प्रभु मैं तुझे समझाऊँ, आध्यात्मिक ज्ञान तुझे कथ पाऊँ।
जीव ईश का अंश पहचानो, उस में ईश्वर के गुण जानो।
ईश्वर बिन आँखों के देखे, इन्द्रिन बिन सब कुछ उल्लेखे।
आत्मा में वही गुण है भाई, आँख वहां न होय सहायी।
आँख बिन जब आत्मा देखे, दिव्य दृष्टि से सत्य उल्लेखे।
देख सके ईश्वर का रूप, जग से सदा रहे जो गूप।
पण्डित पूछी फिर यह बात, दिव्य दृष्टि किमि मिलती तात।
कहा प्रभु गीता खुद बताये, अगले पाठों में यह आये।
सार रूप में बात पहचान, गुरु बिन मिलता न कुछ ज्ञान।
अर्जुन ने था कृष्ण से पाया, शिष्य पाय जब हो गुरु दाया।
पण्डितवर मैं अब बतलाऊँ, अर्जुन के अनुभव कथ पाऊँ।

दो०- कथूँ मैं अर्जुन के अब, अनुभव मेरे मीत।
दिव्य दृष्टि को पाय कर, भया जो उसे प्रतीत॥8140

कृष्ण को कह अर्जुन पाया, भगवन तेरी कैसी माया।
तेरे तन में देखूँ मीत, देव सभी मोहें हो प्रतीत।
ब्रह्मा देखूँ शिव भी देखूँ, सर्व ऋषि और नाग भी पेखूँ।
अनेक भुजा पेट भी तेरे, मुख अनेक वा नेत्र घनेरे।
तेरे रूप अनंत मैं देखूँ, विश्व रूप में उसे उल्लेखूँ।
तेरे रूप का मध्य न होय, और उस का नहीं आदि होय।
मुकुट युक्त वा गदा से युक्त, चक्र से युक्त तेज संयुक्त।
सूर्य सदृश है ज्योति से युक्त, अप्रमेय स्वरूप से युक्त।
जान सका हूँ अब मैं मीत, तुझे मैं अक्षर ब्रह्म लूं चीत।
जग के तुम आश्रय भगवान, धर्म का रक्षक लूं तुझे मान।
आप अनादि पुरुष सनातन, तव चरणि मम झुका है तन।
देख रहा हूँ तुझे भगवान, आदि अन्त रहित श्रीमान।
आप अनन्त सामर्थ्य से युक्त, और अनन्त भुजाओं से युक्त।
चाँद सूर्य सम नेत्र भाई, प्रचण्ड अग्नि सम मुख सुहायी।
तेरे तेज से जग संतप्त, निरख सकल मम चित्त अनुरक्त।

दो०- आप से व्याप्त है जगत, द्यु पृथ्वी के बीच।
सभी दिशाओं के तुम, हो सर्वत्र बीच॥8141

आप के देख इस रूप को, अलौकिक भयदा मीत।
हैं व्यथित त्रिलोकी के, सब जीवों के चीत॥8142

सब देव हूँ देख रहा, प्रवेशें तेरे गात।
कुछ देव भयभीत होय, स्तुति हैं तेरी गात॥8143

महर्षि और बहु सिद्ध जन, स्तुतियों से हैं मीत।
तव गुणों का गाण सब, कर रहे सप्रीत॥8144

आप को हैं निरख रहे, विस्मित हो कर मीत।
रुद्रादि जो देवता, पितर सभी लो चीत॥8145

आप के महा रूप को, मुख हैं जहां अतीत।
कराल दंष्ट्र जिन में लगे, देख सभी भय भीत॥8146

तेरा मैं यह रूप निहार, सकूँ न अपना आप संभार।
गगन को छू रहा तेरा रूप, अनेक वर्ण और तेज अनूप।
मुख खुला और नयन विशाल, देख मम मन होत बेहाल।
धैर्य मेरे न मन में आये, शान्ति न मेरे मन समाये।
व्यथित मेरा है आत्म मीत, अत्यंत दुखी है मेरा चीत।
विक़राल दांत तव मुख में देख, लगे जिमि हूँ मौत को पेख।
दिशा का मुझ को भूला ज्ञान, खो गया मन में हूँ परेशान।
देव देवेश हे जगन्निवास, प्रसन्न भयें, मैं तव हूँ दास।
युद्ध क्षेत्र को मैं जब देखूँ, भयानक दृश्य सन्मुख पेखूँ।
धृतराष्ट्र के सारे पूत, भीष्म द्रोण व सूत का पूत (कर्ण)।
हमारे रथियों के समेत, तव मुख में हैं पड़े अचेत।
तव दाड़ों में भयें हैं चूर्ण, किसी का तन भी है न पूर्ण।
नदियां सागर में जिमि जायें, सकल योधा तव मुख समायें।
दीपक पर जिमि जलें पतंग, रथियों के देखूँ जलते अंग।
तेरे मुख में कर प्रवेश, जलते सभी के अंग अशेष।

दो०- बार बार है चाट रही, तेरी जीभ महान।
उन रथियों के खून को, तव मुख में जो जान॥8147

भरा है तेरे तेज से, सारा जगत महान।
तेरी उग्र ज्वाल से, जलत विश्व लूँ जान॥8148

हे भगवन मुझे आप बतायें, कौन हैं आप जो दृष्टि आयें।
देववर कृपा अब कर पायें, मम प्रणाम को चरणि ग्राहें।
आदि पुरुष! मैं जानन चाहूँ, तव प्रवृत्ति समझ मैं पाऊँ।
इस रूप में कौन हैं आप, जिस से पा रहा जग संताप।
सुन अर्जुन की गिड़गिड़ाहट, कृष्ण कहा "मैं काल हूँ तात"।
मम प्रवृत्ति लो अर्जुन जान, उद्यत हूँ क्षय करन को मान।
नाश हेतु मैं उद्यत मीत, जीवित रहेगा न कोई चीत।
तेरे लड़े बिना भी मीत, जीवित रहे यहां कोई न चीत।
उठो अब लेवो शस्त्र तान, यश का लाभ तुम करो महान।
ब्राह्मण बोला, "हे मम तात, पाय आज्ञा पूछूँ इक बात।
भक्त की इच्छा तो यह होय, ईश्वर दर्शन से शांति गोय।
परम शांति हो उस को मीत, यह दर्शन तो था विपरीत।
देख इसे अर्जुन डर पाया, यह तो था न उस को भाया"।

दो०- सुन पण्डित की बात को, प्रभुवर बोले तात।
गीता ग्रंथ महान है, पूर्ण ज्ञान साक्षात॥8149

ईश्वर के त्रय रूप हैं, कर्ता धर्ता सोय।
हरता भी वह ईश है, सब गीता में होय॥8150

[1] कर्ता रूप ईश्वर हो तब, अपने अंश फैलावे जब।
जीव संज्ञा अंश की जानो, प्रकृति संग तब संसृति मानो।
वह रूप भी गीता गाया, कर्ता रूप ईश्वर बताया।
[2] दूजा रूप ईश्वर का भाई, गीता वर्णित है कर पाई।
कण कण ईश की शक्ति आई, आधार जग का वह कहाई।
धर्ता का वह रूप पहचान, ईश्वर बिन नहीं सृष्टि मान।
[3] तीसरा रूप संहर्ता होय, अर्जुन अभी देखा है सोय।
सृष्टि का नाश होता जब तात, सभी समात ईश्वर में जात।
मुख खुला जिमि यहां दिखलाया, प्रलय का वह रूप समझाया।
ईश्वर में तभी सर्व समाय, सृष्टि में कुछ नहीं रह पाय।

दो०- ईश के तीनों रूप जो, उन का हो जब ज्ञान।
जानो गीता से मिला, सृष्टि का विज्ञान॥8151

कहा पण्डित यह तव दाया, ज्ञान जो अब मैं है पाया।
सुना न मैं कहीं से ऐसा, ज्ञान सम्पूर्ण है यह जैसा।
प्रलय रूप निज कृष्ण दिखाया, अर्जुन को प्रत्यक्ष कराया।
आगे सुनूँ आप की वाणी, गीता की सुगीत कहानी।
कहा प्रभुवर पुनः कथ पायें, प्रसंग उसी को हम चलायें।
अर्जुन को कहा कृष्ण उस काल, पाले वह निज धर्म तत्काल।
मैं तो योधा सभी संहारे, तुम निमित्त मात्र हो प्यारे।
अर्जुन सुनी कृष्ण की बात, कीना उस प्रणाम साक्षात।
गदगद वाणी से कथ पाया, मैं न जानूँ नाथ तव माया।

---

1. देखें गीता 7.4-6 2. देखें गीता 10.20 3. देखें गीता 11.28-30

ठीक लगती मुझे वह नाथ, जगत गाता जो तेरी नाथ।
राक्षस भयभीत हों जायें, ऋषिवर तेरी अस्तुत गायें।
अर्जुन था होय प्रेम अनुरागा, अस्तुत कृष्ण की गाने लागा।

दो०- अर्जुन तुर्यावस्थ में, लागा करन अस्तुत।
अनुभव जो था कर रहा, किया वही प्रस्तुत॥8152

हृषिकेश तेरी कीर्ति, करता सभी जहान।
समझ पाया मैं हे प्रभु, इस का रहस्य महान॥8153

सिद्धों के जो संघ बहु, हैं कर रहे प्रणाम।
राक्षस जन भयभीत हो, भागें दिक् तमाम॥8154

करें न क्यों प्रणाम तुझे, तुझ से बड़ा न कोय।
आदि कर्ता जो ब्रह्म है, वह भी समान न तोय॥8155

आदि देव हैं आप ही, और पुरुष पुराण।
तुम्हीं जगत के आश्रय, विश्वरचा भगवान॥8156

वायु अग्नि यम आप हैं, प्रजापति भी आप।
प्रजापति के भी जनक, वह भी तो हैं आप॥8157

नमस्कार है आप को, बार बार भगवान।
सन्मुख से नमस्कार है, पृष्ट से भी जान॥8158

अनन्त शक्ति वा विक्रम, आप में ही भगवान।
सर्वव्यापक आप हैं, सर्व सृष्टि के प्राण॥8159

अज्ञान में था मैं कहा, हे सखा! हे मीत!।
हे यादव! हे कृष्ण! कहा, था न मुझे प्रतीत॥8160

प्रमाद वश या प्रेम वश, विहार आदि के काल।
भूल भई जो मुझ से, क्षमा करो इस काल॥8161

सर्व लोकों के हो पिता, और गुरु भी आप।
बड़ा कोई न आप से, सर्वश्रेष्ठ हैं आप॥8162

क्षमा करें मम भूल को, हे मेरे भगवान!
क्षमा करत है पिता जिमि, जान पुत्र अनजान॥8163

ऐसा रूप न था कभी, देखा मैंने देव।
अति व्याकुल हूँ भया, देख रूप यह देव॥8164

क्षमा करो भगवान अब, हो प्रसन्न मम नाथ।
पहला रूप दिखाइये, करिये मुझे सनाथ॥8165

प्रभु आप का वही अब रूप, जिस में चक्र सुदर्शन अनूप।
जिस के सिर पै मुकुट सुहाना, गदा भी कर में हो लुभाना।
वह रूप अब मोहे दिखाओ, मम घबराहट को दूर हटाओ।
विनय अर्जुन की सुनकर नाथ, बोले कृष्ण रख उस सर हाथ।
हे अर्जुन मैं प्रसन्न तव साथ, रूप दिखाया योग के साथ।
विराट रूप जो तुझे दिखाया, कभी किसी ने देख न पाया।
देखा विश्व जो यहां समाया, 'विश्वदर्शन' यह योग कहाया।
यह रूप कोई देख न पाये, वेद पढ़े वा यज्ञ कराये।

दान आदि भी बहु कर पाये, रूप कोई न देख यह पाये।
अर्जुन! अब स्वस्थ हो जाओ, मेरा पहला रूप देख पाओ।
ऐसा कह कृष्ण दिखलाया, अपना प्राकृत रूप दिखाया।
सौम्य रूप अर्जुन ने देखा, शांत भया और तब उल्लेखा।

दो०- सौम्य रूप वह देख कर, कहा अर्जुन ने तात।
तेरा दर्शन पाय कर, शांत भया मम गात॥8166

कहा कृष्ण हे मेरे मीत, दर्शन पाया जो तुम इस रीत।
सदा देवों की इच्छा होय, यह रूप कभी देखें सोय।
यह रूप है दुर्लभ भाई, किसी रीत से होय न भाई।
एक उपाय है इस का मीत, कराऊँ तुझे उस की प्रतीत।
अनन्य भक्ति जो मुझ में होय, पा सकेगा दर्शन सोय।
मुझ में ही अन्त काल समाये, जग जंजाल से मुक्ति पाये।
अन्तिम बात कहूँ मैं मीत, राखो इसे ध्यान से चीत।
सब कर्म मम हित कर पाओ, मेरे परायण तुम हो जाओ।
मेरा भक्त ही होवो तात, कुसंगी से न करो कुछ बात।
पण्डित दत्तचित्त सुन पाया, और प्रभु से प्रश्न कर पाया।
नाथ बात तो चित्त यह लागे, इस भक्ति में किमि को पागे।
भक्ति मार्ग खाण्डे की धार, चलना इस पर है दुश्वार।
ऐसा कोई बतायें उपाय, भक्ति मार्ग जिमि सरल हो जाय।
सुन प्रभु उस को कह पाये, प्रश्न तुम्हारा मन को भाये।
प्रश्न तुम्हारे का समाधान, होगा अगले पाठ में जान।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'विश्वरूप दर्शन योग' नाम - ग्यारहवां अध्याय

बारहवां अध्याय

'भक्ति योग'

अपना विराट रूप दिखलाय, प्राकृत रूप में कृष्ण थे आय।
श्रद्धा अर्जुन मन उपजायी, कहा तब उस कृष्ण के ताईं।
भगवन तेरे दोनों रूप, अलौकिक दोय दिव्य स्वरूप।
किस रूप में तुझे ध्यायूँ, जिस से योग युक्त हो जाऊँ।
अर्जुन की यह सुन जिज्ञासा, कृष्ण कहा ला मुख पै हासा।
विराट रूप जो तुम देखा, निराकार ब्रह्म था पेखा।
नित्य युक्त जो उसे ध्याये, श्रद्धापरम से चित्त लगाये।
सर्वत्र ब्रह्म को लख पावे, इन्द्रियों को भी वश में लावे।
भूतों का जो हित कर पावे, ब्रह्म को योगी वह पा जावे।

दो०- अव्यक्त की यह साधना, है बतलाई तात।
इस को ले जो साध जन, स्वयं ब्रह्म हो जात॥8167

अव्यक्त की यह साधना, सुगम नहीं है मीत।
इस में क्लेश अधिक हैं, परम चंचल है चीत॥8168

देहधारी जो जीव हैं, यह न सब कर पायें।
एक अन्य है साधना, गृहस्थी जो कर पायें॥8169

साकार का है ध्यान वह, मम रूप जो ध्याये।
भक्ति भाव से ही भजे, मुझ में आ समाये॥8170

मुझ में मन लगाय कर, नित्य रहे जो युक्त।
श्रद्धा जिस के मन बसे, जान परम वह युक्त॥8171

मत्परायण होय कर, सारे अपने कर्म।
मेरे अर्पण ही करे, यह हो उस का धर्म॥8172

मन में अनन्य भाव हो, निश्चल होवे चित्त।
ऐसे योगिन का सदा, करता हूँ मैं हित्त॥8173

उन का करूँ उद्धार मैं, भव सागर से मित्त।
मुझ में उनका मन रमे, मुझ में रहता चित्त॥8174

पण्डित ने यह श्रवण कर, प्रभु को कहा हे तात।
मेरे मन का ज्ञान मुझे, आज मिला साक्षात॥8175

मेरा प्रश्न है नाथ जी, प्रभु भक्त जो होय।
उस भक्त के कौन से, नेम पाले जो सोय॥8176

कहा प्रभु तुम श्रवण करो, नेम भक्त के मीत।
भक्त में जो होंय गुण, श्रवण करो ला चीत॥8177

कृष्ण बतलाये हैं स्वयं, अर्जुन को मम मीत।
पैंतीस गुण जो भक्त के, श्रवण करो ला चीत॥8178

प्रथम गुण है यही कथा, भजे प्रभु सप्रीत।
'अर्पित करे मन बुद्धि को', प्रभु प्रति मम मीत॥8179

'नित्य रहे जो युक्त' जन, व्यवधान न हो पाय।
गुण जिस में यह दूसरा, प्रभु कृपा वह पाय॥8180

'श्रद्धा परम मन में बसे', भजन करे सप्रीत।
गुण जिस में यह तीसरा, योग युक्त वह मीत॥8181

'इन्द्रिय संयम भक्त का', दृढ़ नेम यह जान।
गुण चौथा यह जानिये, इसे आवश्यक मान॥8182

'सम बुद्धि जो जन रहत', सर्वत्र सब प्रति मीत।
गुण पंचम तो है यही, अगर प्रभु से प्रीत॥8183

'सर्व भूत रत जो भये', बिन भेद के मीत।
गुण जिस में यह छटवां, जन विशेष लो चीत॥8184

'ईश अर्पित सब कर्म हों, प्रभु परायण मीत'।
गुण सातवां जिस में भये, भक्त उत्तम वह चीत॥8185

'ध्यान धरे निज इष्ट का, अनन्य भाव से जोय'।
गुण अष्टम उस भक्त में, प्रभु दर्शन को गोय॥8186

और गुण जो कृष्ण कहे, भक्ति के मम मीत।
उन को भी हैं कथ रहे, श्रद्धा से लो चीत॥8187

नवम गुण अब जानिये, 'अर्पित करे निज आत्म'।
प्रभु चरणों में भक्ति से, मिल जाय परमात्म॥8188

दशवां गुण महान है, 'सर्वभूत अद्वेष'।
प्रिय बने सब जगत का, इस में शक न लेश॥8189

'निरहंकारी जन बने', गर्व न राखे चित्त।
गुण ग्यारहवां यह कथा, कृष्ण चन्द्र हे मित्त॥8190

'करुणा भाव जिस में भये', भक्त उत्तम लो जान।
गुण द्वादशवां जानिये, भक्त की यह पहचान॥8191

'भक्त निर्मम होत है', मोह माया से हीन।
तेरहवां गुण यह भक्त का, इस को भी लो चीन॥8192

'मैत्री सब से राखिये', शत्रु होय न कोय।
गुण चौदहवां जब भये, सर्व प्रिय जन होय॥8193

'दुख सुख में जो सम रहे', जन भक्त मम मीत।
उस पुरुष सम को भये, गुण पंदरहवां चीत॥8194

'जन संतोषी सदा सुखी', यह अटल सिद्धांत।
गुण सोलहवां जो गहे, रहे सदा ही शांत॥8195

'भक्त होय संयतात्मा', संयमित जीवन होय।
नेम सतरहवां धार यह, पथ मोक्ष का गोय॥8196

'भक्ति में दृढ़ निश्चय हो', प्रमाद करे न लेश।
गुण अठारहवें पर चल, रहत न लेश क्लेश॥8197

योगी का स्वभाव यह, 'उद्विग्नकारी न होय'।
गुण उन्नीसवां है यही, सुखकर सब को होय॥8198

'उद्विग्न हो न स्वयं भी', देख अन्य के दोष।
गुण बीसवां है यही, भक्त रहे निर्दोष॥8199

'हर्षामर्ष न छू सके, भय आदि भी मीत'।
गुण इक्कीसवां जान लो, यह योगी की रीत॥8200

गुण बाइसवां जान लो, 'भक्त आकांक्षा रहित'।
जन 'अनपेक्ष' कहलाय', इस गुण के जो सहित॥8201

'तन मन से जो शुद्ध हो', भक्त वही लो जान।
जानो गुण यह तइसवां, गीता करत बखान॥8202

'जीवन में हो दक्षता', निज कर्म में मीत।
गुण चौबीसवां है यही, ले भक्त चित्त चीत॥8203

'उदासीन जो जन भये, लाभ हानि से मीत'।
उस योगी में होत है, गुण पच्चीसवां चीत॥8204

दुख में दुखी होंय सभी, योगी दुखी न होय।
'गतव्यथा' गुण छबीसवां, योगी का वह सोय॥8205

जन आरंभे कर्म करे, निज इच्छा अनुसार।
'सर्वारंभ परित्यागी', योगी सब प्रकार॥8206

सताइसवां गुण है यही, योगी का लो जान।
मोक्ष उसे ही मिलत है, कथन कीन भगवान॥8207

'हर्ष न योगी के चित्त, नहीं होत द्वेष'।
यह गुण अठाइसवां, योगी मुक्त क्लेष॥8208

'शुभाशुभ परित्यागी', योगी जग प्रसिद्ध।
यह गुण उनतीसवां, योगी में जो सिद्ध॥8209

योगी का व्यवहार इक, 'मित्र व शत्रु साथ।
समदृष्टि योगी सदा', योगी जग का नाथ॥8210

गुण तीसवां जानिये, 'साम्यता' का जोय।
इसी गुण के कारणे, सर्वप्रिय वह होय॥8211

'मान अपमान में भी, सम योगी रह पाय'।
चाह न उस को मान की, न अपमान सताय॥8212

इकतीसवां यह गुण है, योगी में जो होय।
जग भूखा है मान का, न योगी ऐसा होय॥8213

'शीतोष्ण में सम रहत', योगी का स्वभाव।
सहन करत वह शीत को, ग्रीष्म भी सह चाव॥8214

गुण बतीसवां है यही, विरले में जो होय।
योगी तपस्वी जानो, नहीं विचलित होय॥8215

गुण तैंतीसवां है कहा, गीता में भगवान।
'बहु संगी न होत वह', योगी को लो जान॥8216

मौन गुण महान होय, 'योगी मौनी होय'।
मनन शीलता जानिये, ज्ञान की जननी सोय॥8217

चौंतीसवां यह गुण है, समाधि का जो सार।
इस गुण के अभ्यास से, भव से हो जन पार॥8218

अन्तिम गुण अब हम कहें, 'योगी स्थिर मति होय'।
स्थित प्रज्ञता योग में, कृष्ण बताई सोय॥8219

[1] पैंतीस गुण ये जानिये, जिस योगी में होंय।
प्रभु दर्शन के योग्य तब, बन सकेगा सोय॥8220

---

1. योगी भक्त के 35 गुण :-

1. मन बुद्धि भगवान अर्पण	2. नित्य युक्त रहना	3. परम श्रद्धा होना
4. इन्द्रियों का संयम	5. सर्वत्र समबुद्धि	6. सब प्राणियों से प्रेम
7. सब काम ईश्वर अर्पण करना	8. अनन्य योग से ध्यान करना	9. आत्मा को भगवान अर्पण करना
10. सर्वभूतों में अद्वेष भावना	11. निरहंकारी रहना	12. करुणा भावना
13. निर्मम रहना	14. सर्वत्र मैत्री भाव	15. सुख दुख में सम रहना
16. संतोष	17. संयतात्मा	18. दृढ़ निश्चयता
19. उद्विग्नकारी न होना	20. स्वयं उद्विग्न न होना	21. हर्षामर्ष से रहित
22. आकांक्षा रहित होना	23. तन, मन से शुद्ध	24. कर्मों में दक्षता

अगले पृष्ठ पर देखें -

पण्डित ने तब प्रश्न किया, हे योगि महाराज।
जितने गुण मैं हैं सुने, क्या संभव वे आज॥8221

प्रभु बतलाया तब उसे, हे पण्डित विद्वान।
इन गुणों के साथ ही, चाहिए जन को ज्ञान॥8222

अगले पाठ में ज्ञान मिले, योगी को जो होय।
बिन ज्ञान तो न संभव, इक कौड़ी भी जोय॥8223

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'भक्ति योग' नाम - बारहवां अध्याय

---

25. लाभ हानि से उदासीन
26. गतव्यथा
27. सर्वारंभ परित्यागी होना अर्थात् इच्छा रख कर कर्म न करना
28. द्वेष भावना का परित्याग
29. शुभाशुभ परित्याग
30. मित्र शत्रु प्रति समभाव
31. मान अपमान में समभाव
32. शीतोष्ण में समभाव
33. बहुसंगी न होना
34. मौन रहना
35. स्थित प्रज्ञता

तेरहवां अध्याय

'क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग'

दो०- ज्ञान बिना न भक्ति है, भक्ति बिना न ज्ञान।
यही बात दर्शाने हित, यह अध्याय लो जान॥8224

कृष्ण ने अर्जुन को समझाया, 'क्षेत्र' 'क्षेत्रज्ञ' का ज्ञान कराया।
'क्षेत्र' शरीर को लेवो जान, 'क्षेत्रज्ञ' ईश्वर को पहचान।
सब 'क्षेत्रों' में ईश का वास, देह में भी है उस का वास।
इन दोनों का पूर्ण ज्ञान, हे अर्जुन तू मुझ से जान।
शास्त्र में जो बात कथ पाई, वही कथूँ मैं तुझ से भाई।
[1] क्षेत्र का स्वरूप पहचानो, महाभूतों से निर्मित मानो।
'अहंकार' 'बुद्धि' और 'अव्यक्त', महाभूतों के साथ हैं युक्त।
दश इन्द्रियां और मन जो एक, [2] इन्द्रिन पांच के विषय प्रत्येक।
इच्छा, द्वेष, सुख, दुख को जानो, चेतना धृति व देह पहचानो।
यह सब क्षेत्र है कहलाया, और सविकारी है कथ पाया।

दो०- क्षेत्र सविकारी होत है, बहु तत्व का समुदाय।
महाभूत अहंकार का, बुद्धि भी संग आय॥8225

---

1. महाभूत - पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश
   व्यक्त - मूल प्रकृति
2. पांच इन्द्रियों के विषय - गन्ध, रस, स्पर्श, रूप, शब्द

अंग प्रत्यंग देह के, और उन में जो ज्ञान।
विषय भी उन के जान लो, सभी क्षेत्र पहचान॥8226

क्षेत्रज्ञ है परमात्मा, अविकारी वह मीत।
निर्गुण और वह अव्यय, अलिप्त देह में चीत॥8227

सूक्ष्म रूप आकाश जिमि, सर्व जगत के माँझ।
लिपायमान न होत है, आत्मा तिमि देह मांझ॥8228

यह ज्ञान जो है कथा, ले भक्त जो पाय।
मोक्ष पद उपलब्ध उसे, परम गति को जाय॥8229

उस भक्त के चित्त में, उदित ज्ञान लो मान।
उस ज्ञान का वर्णन, गीता में लो जान॥8230

कर्म कसौटी ज्ञान की, ज्ञान कर्म से जान।
उस के अन्तर ज्ञान जो, लेता जग पहचान॥8231

[1] उन्नीस गुण जो हैं लिखे, भगवद्गीता मांझ।
ज्ञानी में वे सब मिलें, साधारण के न मांझ॥8232

---

1. ज्ञानी का स्वभाव व गुण (19 उन्नीस गुण) :-
   1. अमानित्व
   2. शांति
   3. शौच
   4. इन्द्रियार्थों में वैराग्य
   5. अदम्भत्व
   6. आर्जवम्
   7. स्थैर्य
   8. अनहंकार
   9. अहिंसा
   10. आचार्य उपासना
   11. आत्म विनिग्रह
   12. जन्म, मृत्यु, जरा, व्याधि में दोषानुदर्शन

अगले पृष्ठ पर देखें -

ज्ञानी का गुण प्रथम है, 'मान रहित' हो सोय।
दूजा गुण भी जान लो, 'दम्भरहित' वह होय॥8233

'अहिंसक' ज्ञानी होत है, 'क्षमाशील' भी सोय।
'आर्जव' गुण विशेष है, पूर्ण ज्ञानी जो होय॥8234

'आचार्य की उपासना', ज्ञानी जन में मीत।
'शौच' कर्म उस को प्रिय, जग ले मन में चीत॥8235

'स्थित प्रज्ञता' विशेष है, ज्ञानी का गुण जान।
उस का जो 'संकल्प' हो, सदा अटल लो मान॥8236

'आत्मविनिग्रह' और गुण, 'विषयों से वैराग'।
'अहंकार' का न नाम भी, होय न उस में राग॥8237

'दोषदर्शी' होत वह, जन्म, मृत्यु व व्याध।
'जरा अवस्था' निरख उसे, ग्लानि होत अगाध॥8238

'पुत्र दारा गृहादि में, आसक्ति उसे न हो'।
और सदा सम चित्त रहे, 'इष्टानिष्ट' कुछ हो॥8239

---

13. पुत्र, दारा, गृह आदि में अनासक्ति
14. विविक्त देश वास
15. तत्व ज्ञानार्थदर्शन
16. इष्टानिष्ट में समचित्त
17. जनसंसद में अरति
18. अनन्य योग द्वारा अव्यभिचारी भक्ति
19. अध्यात्म ज्ञान में नित्य निरत रहना

'भक्ति अव्यभिचारिणी', अनन्य भाव से होय।
'विविक्त देश' में रहत वह, जन समूह न गोय॥8240

'आत्म ज्ञान' में निरत, नित्य रहे वह मीत।
'तत्व ज्ञान' विचारना, हर दम उस की रीत॥8241

ज्ञानी का स्वभाव यह, गुण व उस का जान।
देह को क्षेत्र जानता, क्षेत्रज्ञ को भगवान॥8242

'क्षेत्रज्ञ' की पहचान करायें, 'ज्ञेय' भी उस को ही कथ पायें।
'ज्ञेय' को जो जानन पाये, 'अमृतपद' को वह पा जाये।
'परब्रह्म' है वही कहलाया, और 'अनादि' भी कथ पाया।
'सत्' 'असत्' से परे वह भाई, रूप न उस का कथ को पाई।
उस के हाथ सर्वत्र जानो, आँख शिर और मुख पहचानो।
कान उस के सर्वत्र भाई, सब जगती उस भीतर समाई।
सर्व इन्द्रिन के विषय उस पास, इन्द्रिन से वह रहित है खास।
धारण पोषण सब का करता, रहता फिर भी वह अकर्ता।
सर्व गुणों का कारण जानो, परन्तु उसको निर्गुण मानो।
चर अचर भी उस से जानो, बाहर भीतर सब के मानो।
सूक्ष्म है नहीं दीखे सोय, दूर भी है, समीप भी सोय।
अविभक्त ही कहावे सोय, फिर भी विभक्त भूतों में होय।
तीन गुण उसी से जान, कर्ता, भर्ता, संहरता मान।
ज्योतियों की भी ज्योति कहाय, अन्धकार से परे लखाय।
ज्ञान स्वरूप ज्ञेय है भाई, ज्ञान से ही जाना जाई।

सब के हृदय में वह होय, 'क्षेत्रज्ञ' अतः कहावे सोय।
हे पण्डित जो तुम सुन पाया, अर्जुन को था कृष्ण बताया।
'क्षेत्र' संक्षेप से बतलाया, 'ज्ञेय' और 'ज्ञान' कथ पाया।
इसी विषय में और भी भाई, कृष्ण से अर्जुन जानन पाई।
वह भी अब तुम सुन लो मीत, गीता से है आप की प्रीत।
जगत अनादि ही तुम जानो, पुरुष प्रकृति दोय पहचानो।
विकार और गुण जो भी होंय, वे तो प्रकृति में ही होंय।
[1]'कार्य' का हेतु प्रकृति जान, [2]'करण' का हेतु वही पहचान।
[3]'पुरुष' का रूप कृष्ण बताया, गीता में जिस विध लिख पाया।
'पुरुष' को तुम इमि पहचानो, सुख दुःखों का भोक्त मानो।
प्रकृति से सुख दुख उपजाते, पुरुष के भोग में वे आते।
परमात्मा का भी है समझाया, देह में परमपुरुष बन आया।
उस का कार्य भी लेवो जान, द्रष्टा अनुमन्ता वह पहचान।
भर्ता कर्ता और स्वामी, महेश्वर परमपुरुष शुभ नामी।
योग का मार्ग कृष्ण बतायें, मुक्ति का मार्ग भी कथ पायें।
पुरुष, प्रकृति और गुण हैं जोय, उन्हें जाने जन मुक्ति गोय।
जीवन में सभी करता काम, फिर भी पात वह मुक्ति धाम।
मुक्ति के मार्ग और भी भाई, गीता उन को भी कथ पायी।

---

1. कार्य - आकाश, वायु, अग्नि, जल, पृथ्वी तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, और गन्ध -इन का नाम 'कार्य' है।
2. करण - बुद्धि, अहंकार और मन तथा श्रोत्र, त्वचा, रसना, नेत्र, घ्राण एवं वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ, और गुदा इन तेरह का नाम 'करण' है।
3. पुरुष - जीवात्मा

ध्यान से देखे आत्म रूप, हो जाता वह मुक्त स्वरूप।
सांख्य से भी मुक्ति जन पायें, कर्म योग से भी पा जायें।
कुछ निर्बोध जन भी होंय, सुन कर ईशपरायण होंय।
वे भी भवसागर तर जाते, बहुर जन्म में वे नहीं आते।
सृष्टि का रूप कृष्ण बतलाया, 'क्षेत्र' 'क्षेत्रज्ञ' संयोग जताया।
उस सृष्टि में ईश्वर रह पाये, नश्वर में अविनाशी आये।
उस ईश्वर को जो पहचाने, वही संपूर्ण सृष्टि को जाने।
ईश्वर सम रूप रह पाता, जिसे सर्वत्र वह दिख पाता।
आत्म हन्ता न वह जन होय, परम गति को वह जन गोय।
प्रकृति से हो रहे सारे कर्म, आत्मा उस में रहत अकर्म।
इस विध आत्मा को पहचाने, वह सृष्टि को ठीक ही जाने।
अलग अलग भूत जो जग में मीत, एक ईश्वर में स्थित लो चीत।
ईश्वर ने ही कीन विस्तार, ऐसी दृष्टि ले जन जो धार।
उस का ज्ञान ठीक पहचानो, उस को ब्रह्म लीन ही मानो।
अन्त में कृष्ण ने समझाया, 'क्षेत्र' 'क्षेत्रज्ञ' का संबंध बताया।
देह में आत्मा रहती जोय, न करे कुछ न लिप्त भी होय।
वह अनादि निर्गुण है जानो, अव्यय पुरुष उसे पहचानो।
यथा आकाश सर्वत्र होय, और कहीं भी लिप्त न होय।
ऐसे आत्मा देह में व्याप्त, कहीं भी लिप्त नहीं है तात।
सूर्य जिमि करता सर्वत्र प्रकाश, तिमि तन में पूर्ण आत्म प्रकाश।
'क्षेत्र' 'क्षेत्रज्ञ' का भेद जो जाने, मोक्ष का मार्ग वह पहचाने।

दो०- क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग को, सुना पण्डित इस रीत।
ज्ञान चक्षु उस के खुले, प्रभु को कहा सप्रीत॥8243

योगिवर जो ज्ञान है पाया, इमि स्पष्ट न कहीं सुन पाया।
धन्य धन्य मैं हो गया तात, तत्व ज्ञान की सुन यह बात॥ 8244

प्रकृति के जो त्रयगुण बतलाये, और जीव भिन्न उन से जाये।
यह बात न स्पष्ट मोहे मीत, कराईये इस की भी प्रतीत।
कहा प्रभु समझ इसे भी पायें, अगले पाठ में जब हम जायें।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग'
नाम - तेरहवां अध्याय

चौदहवां अध्याय

'गुण त्रय विभाग योग'

दो०- पण्डित ने था पूछा, तीन गुणों का ज्ञान।
कहा प्रभु अब स्पष्ट हो, इस अध्याय में जान॥8245

'महद्ब्रह्म' तो मात है, पिता ईश्वर जान।
दोनों के संयोग से, होत सृष्टि है मान॥8246

जहां कहीं भी सृष्टि है, 'महद्ब्रह्म' है मात।
पिता है भगवान वहां, इस विध सृष्टि तात॥8247

'प्रकृति' कहें 'महद्ब्रह्म' को, पिता पुरुषोत्तम मीत।
प्रकृति में गुण तीन हैं, यह भी लेवो चीत॥8248

सत्त्व रज और तम हैं, प्रकृति के गुण तीन।
तीनों गुण ही बांधते, जीव को लो चीन॥8249

पण्डित बोला मित्रवर, पूछूँ यह ही बात।
किस विध हैं वे बांधते, जीवात्मा को तात॥8250

कहा प्रभु मैं यही कथ पाऊँ, गीता में जो लिखा बताऊँ।

दो०- किस विध वश में होत है, आत्मा अव्यय जोय।
गीता करत स्पष्ट यह, पढ़े जो जाने सोय॥8251

सत्त्व जानो प्रकाशमय, निर्मल अव्यय चीत।
ले जीव को बाँध वह, ज्ञान व सुख से मीत॥8252

रज राग का मूल है, तृष्णा उस के साथ।
जीव को ले बाँध वह, कर्मों के ही साथ॥8253

तम से होत अज्ञान है, मोह में डाले सो।
प्रमाद निद्रा आलस, जीव इन्हीं वश हो॥8254

सत्त्व से मिलता सुख है, रज से कर्म का संग।
तम जनक अज्ञान का, प्रमाद उस के संग॥8255

सत्त्व जभी है उभरता, रज तम होवें शांत।
रजस जभी है उभरता, तम सत्त्व हों शांत॥8256

तम प्रबल जिस काल में, सब का करत विनाश।
सत्त्व रज नहीं फड़कें, तामस जन के पास॥8257

सत्त्व प्रधान जन भये, देह में हो प्रकाश।
ज्ञान की हो प्रधानता, सत्त्व का गुण खास॥8258

रजस प्रधान हो जब, होय कर्म का चाव।
शांत न बैठ सके पुरुष, रज का यह प्रभाव॥8259

जभी तमस प्रधान हो, प्रमाद मोह आ जाय।
अन्धकार अन्धकार हि, अन्तर में छा जाय॥8260

गीता स्पष्ट बतलाती, इन सब का जो फल।
मर जीव कहां जायगा, मिले और क्या फल॥8261

हे पण्डित यह स्पष्ट है, गीता जो बतलात।
गीता का उपदेश तो, है निर्मल साक्षात॥8262

ध्यान दे कर श्रवण कर, यह काम की बात।
सब बातों से उत्तम, मैं जानूँ है तात॥8263

सत्व अवस्था में जभी, त्यागत जीव शरीर।
जाये उत्तम लोक में, नूतन धर शरीर॥8264

रजस अवस्था में जभी, त्यागत जीव शरीर।
कर्म संगी वह हो जन, नूतन धार शरीर॥8265

तम अवस्था में जीव जो, त्यागत है शरीर।
मूढ़ योनी में जाता, नूतन धार शरीर॥8266

पुनः गीता है कथ रही, तीन गुणों का ज्ञान।
सत्व गुण से ऊपजत, सुख शांति लो जान॥8267

राजसिक गुण आयुक्त जो, करता वैसे काम।
फल पाये निज कर्म से, जीवन वह तमाम॥8268

तामसिक गुण सयुक्त जो, करता वैसे काम।
कुकर्मन से फल पाय वह, दुःख प्रात व शाम॥8269

होत सत्व से ज्ञान है, रज से लोभ महान।
तम से जो भी ऊपजा, उस का नाम अज्ञान॥8270

सात्विक जन की ऊर्ध्व गति, राजस मध्यम मीत।
अधम तामसिक की गति, पण्डित लो तुम चीत॥8271

सभी गुणों का बन्धन, काटे जन यदि कोय।
ईश्वर को पहचानता, गुण रहित हो सोय॥8272

स्वयं हो गुण रहित वह, जन्म मृत्यु से छूट।
दुखों से वह मुक्त होय, संग ईश्वर अटूट॥8273

अर्जुन ने था कृष्ण से, सुना ज्ञान यह तब।
प्रश्न गूढ़ उस ने किया, कृष्ण चन्द्र से तब॥8274

हे कृष्ण मुझे यह बतलायें, त्रिगुणातीत जो जन हो जायें।
उन के चिह्न क्या हों भाई, उन का आचरण क्या हो जाई।
और बात यह बतलायें, तीन गुणों से किमि तर पायें।
इन का उत्तर कृष्ण जो दीन, सुनो वही पण्डित प्रवीन।
त्रिगुणातीत होय जो भाई, गुण प्रभाव तब होय न राई।
प्रकाश, कर्म व मोह कहायें, उसे समान सभी दिख पायें।
कार्य अकार्य में इक सम सोय, मोह, अमोह न जाने सोय।
उदासीन वह रहता मीत, गुणों से विचलित न उस का चीत।
उसे गुणातीत लो जान, यह है उस की मुख्य पहचान।
सुख दुख में वह रहत समान, माटी, सोना उसे इक समान।

प्रिय अप्रिय में न उस को भेद, निन्दा स्तुति में न कुछ खेद।
मान अपमान वह जाने एक, शत्रु मित्र मध्य दृष्टि एक।
कर्ता का अभिमान न होय, त्रिगुणातीत जन जानो सोय।
दूजा प्रश्न अर्जुन का मीत, किस विध जन हो त्रिगुणातीत।
उस का उत्तर कृष्ण दे पाय, सुनो उसे तुम मन को लाय।
योग युंक्त सदा जन होय, अनन्य भक्ति भी करे संग सोय।
इस विध जन हो त्रिगुणातीत, ब्राह्मी अवस्था उस की मीत।
जन वह ब्रह्म में जा समाय, 'आनन्द आश्रय' जो कथनी आय।
हे पण्डित ''गुण त्रय विभाग'', क्या संपूर्ण समझ में लाग।
कहा पण्डित सब समझ हूँ पाया, मेरे चित्त इक प्रश्न अब आया।
उस ब्रह्म का क्या होता रूप, धारूँ चित्त में जो स्वरूप।
कहा प्रभु चलें अगल अध्याय, वहां बात यह समझ में आय।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'गुण त्रय विभाग योग'
नाम - चौदहवां अध्याय

पंदरहवां अध्याय

'पुरुषोत्तम योग'

दो०- ब्रह्म स्वरूप दुरूह है, इस का चाहो ज्ञान।
पुरुषोत्तम को देख लो, कृष्ण रूप भगवान॥8275

आदि पुरुष पुरुषोत्तम, रचा यह संसार।
पुरुष रूप जो जीव है, बंधा कर्मानुसार॥8276

गीता जगत का रूप बताये, वट वृक्ष सम है कथ पाये।
जिस की जड़ ऊपर को भाई, नीचे हैं शाखायें छाईं।
वृक्ष के नीचे परम अंधेरा, लागे न कभी होत सवेरा।
जीव बंधा उस में भाई, निकलने का न राह दिख पाई।
निकलने का है एक उपाय, शाखाओं सहित वृक्ष काटा जाय।
उस के ऊपर मिले प्रकाश, दीखे 'ब्रह्म' जिमि सूर्य आकाश।
वह तो 'पुरुषोत्तम' है भाई, जिस ने सृष्टि सकल रचाई।
किस विध वृक्ष वह काटा जाये, 'असंग शस्त्र' से कृष्ण बताये।
और शस्त्र न काम का जान, दृढ़तम मूल यह वृक्ष महान।

दो०- उस वृक्ष से निकल कर, खोजे वही स्थान।
जिस स्थान पर जाय कर, लौटे न इन्सान॥8277

'आदि पुरुष' पुरुषोत्तम, दर्शन देगा मीत।
रचन हार जो ब्रह्म है, सर्व सृष्टि का चीत॥8278

कहा पण्डित योगिवर भाई, तुम ने नई एक बात बताई।
वट वृक्ष का प्रसंग जो आया, रोचक अत्यंत दिख है पाया।
सच मुच जगत उस वृक्ष का रूप, जिस तले अंधेरा गूप।
उस को जो जन काट दिखाये, सके वही प्रकाश में आये।
असंग शस्त्र कथन में आये, शस्त्र वह जन कैसे पाये।
योगीवर यह भी करिये स्पष्ट, भ्रांति हो जिमि पूर्णतया नष्ट।
कहा प्रभु मैं क्या बतलाऊँ, श्री कृष्ण के ही शब्द सुनाऊँ।
उस शस्त्र को वह ही पावे, जो जन योग नियम अपनावे।
उस का कृष्ण है कीन बखान, उस के गुण भी कीन बयान।
[1]छः गुण हैं कृष्ण बतलाये, उन से सफलता जन पा जाये।
'मान रहित' जन पुरुषोत्तम जाने, 'मोह रहित' जन उसे पहचाने।
'आसक्ति रहित' हो जो मीत, अधिकारी उस का वह लो चीत।
'नित्यस्थित' जो योगी होय, इस मग का अधिकारी सोय।
'कामना मिटी हों जिस की सारी', इस मग का हो वही अधिकारी।
जो भी द्वंद्वमुक्त हो जाये, योगी वह इस मग को पाये।

दो०- अधिकारी ही देखता, पुरुषोत्तम का रूप।
उस जन को ही मिलत है, ब्रह्म ज्ञान अनूप॥8279

गीता ग्रंथ व्यास रच पाया, ज्ञान अलौकिक इस में आया।
कही पण्डित ने प्रभु से बात, मेरे मन में भाव इक तात।

---

1. पुरुषोत्तम प्राप्ति के लिए छः आवश्यक गुणः- गीता 15.5
   1. मान रहित 2. मोह रहित 3. आसक्ति रहित
   4. परमात्मा में नित्यस्थिति 5. नष्टकाम 6. सुख दुख आदि द्वन्द्वों से मुक्त

पुरुषोत्तम के गुण सब सुन पाऊँ, सुन सुन कर मैं न अघाऊँ।
कहा प्रभु जो भगवान बताया, गीता में भी जो लिख पाया।
वही बात मैं तुझे बताऊँ, गीता के ही वचन सुनाऊँ।
गीता में जो ज्ञान है आया, वह कहीं नहीं है दिख पाया।
मेरा मत तो जानो ऐसा, ग्रंथ मिले नहीं गीता जैसा।
ऐसा ग्रंथ न जग में कोय, प्रभु के मुख से निकला होय।
'ब्रह्म' के गुण कृष्ण बतलाये, मानो गुण अपने कथ पाये।
'स्वयं प्रकाश' ईश वह जानो, सूर्यादि से न प्रकाशित मानो।
उस 'पुरुषोत्तम धाम' से मीत, जाकर लौटा न कोई चीत।
'पुरुषोत्तम अंश' जानो सोई, पुरुष रूप में आता जोई।
'जीव' की संज्ञा को वह धार, इन्द्रिन प्रकृति से लेत उधार।
देह को त्याग जीव जब जाये, इन्द्रिन को वह संग ले जाये।
उन्हीं सहित गहे काय नवीन, जन्म जन्म की श्रृंखला चीन।
वायु जैसे गंध ले जाये, जीव इन्द्रिन तिमि ले जाये।
ज्ञानी जन उस जीव को देखे, आते जाते उस को पेखे।
अज्ञानियों को कुछ न भासे, 'ज्ञान चक्षु' से ही प्रकासे।
यत्न शील योगी सकता देख, अयत्न शील सके न कुछ भी पेख।

दो०- ईश्वर का ही रूप है, आत्मा जिस का नाम।
उसी से सूर्य चमकता, अग्नि चन्द्र तमाम॥8280

पृथ्वी की जो उपज है, औषधि आदि जोय।
आत्मा के ही ओज से, हैं बढ़त सब सोय॥8281

प्राण अपान जो देह में, उन्हें चलाये मीत।
आत्मा तो है यही, लो यह चित्त में चीत॥8282

आत्मा जिस का अंश है, वह 'पुरुषोत्तम' जान।
सर्व देहों में बसत है, उस को भी पहचान॥8283

सभी के हृदय में स्थित, उसी से सकल ज्ञान।
वेद सब उसे बखानें, ऐसा लेवो जान॥8284

देह में दो पुरुष हैं, [1]'क्षर' व 'अक्षर' जान।
'क्षर' तो सारे 'भूत' हैं, 'अक्षर' आत्मा मान॥8285

उत्तम पुरुष जो और है, वह पुरुषोत्तम मीत।
तीन लोकों में बसत वही, शास्त्र कहें सप्रीत॥8286

'क्षर' से भी है जो परे, 'अक्षर' से भी जान।
'पुरुषोत्तम' उसी को कहें, यह है सारा ज्ञान॥8287

इस विध जो पहचानता, उस ईश्वर को मीत।
पूर्ण भाव से भजन करे, उस को लेवो चीत॥8288

यह तो गुह्यतम ज्ञान है, गीता करत बखान।
जो भी इस को समझते, कृत कृत्य वे इन्सान॥8289

सुन कर इस उपदेश को, खुले पण्डित के नयन।
कृत कृत्य हूँ मैं भया, कीना स्पष्ट बयान बखान॥8290

1. क्षर - प्रकृति अक्षर - आत्मा, जीव

एक बात पर उस कही, प्रभु जी से उस काल।
क्यों न सभी पहचानते, योगी भी सब काल॥8291

कहा प्रभु तुम को मिले, उत्तर इस का मीत।
पाठ अगले में चलें, होय तभी प्रतीत॥8292

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'पुरुषोत्तम योग' नाम - पंदरहवां अध्याय

सोलहवां अध्याय

'दैवासुरसंपद्विभाग योग'

दो०- मनुष्य दो प्रकार के, जिन का जग में वास।
दैव यहां पर एक हैं, असुर दूसरे खास॥8293

[1] संपद दैवी देव की, आसुरी दूजी जान।
दोनों का ही वर्णन, है कीन भगवान॥8294

दैवी संपद का करें बखान, सताइस (27) गुण हैं उस में जान।
प्रथम गुण 'अभय' को जानो, निर्भयता गुण विशेष मानो।
'सत्त्वशुद्धि' दैवी गुण खास, जग को देवों पर विश्वास।
तीजा गुण 'ज्ञान' का भाई, ज्ञान संग विज्ञान हो पाई।
'योग व्यवस्थिति' ईश मिलाये, देव ईश्वर भक्त कहलाये।

---

1. दैवी संपद् :- गीता 16.1-3

1. अभय	2. सत्त्व संशुद्धि	3. ज्ञान
4. योगव्यवस्थिति	5. दान	6. दम
7. यज्ञ	8. स्वाध्याय	9. तप
10. आर्जव	11. अहिंसा	12. सत्य
13. अक्रोध	14. त्याग	15. शांति
16. अपैशुनता	17. दया भूतेषु	18. अलोलुपता
19. मार्दव	20. ह्री	21. अचापलता
22. तेज	23. क्षमा	24. धृति
25. शौच	26. अद्रोह	27. नातिमानिता

'दान' कारण जन देव कहाये, देव जगत को देते आये।
जिस का तन मन वश में होय, 'दम' से वह जन देव बन पाय।
जीवन जिसका 'यज्ञ' का रूप, मानो वह जन देव स्वरूप।
'स्वाध्याय' से जन ईश पहचाने, दिव्य जीवन को वह नर जाने।
देवों में हो 'तप' प्रधान, बिन तपस्या देव न जान।
देवों में गुण 'आर्जव' होय, संशय करे न उन पै कोय।
तन मन से न किसे दुखावें, वे सभी को सुख दे पावें।
'अहिंसा' ही उन की है रीत, सब जगत से उनकी प्रीत।
बारहवां गुण 'सत्य' है जान, इससे बड़ा न धर्म पहचान।
'क्रोध' न देवों के चित्त जान, ''शांत'' स्वभाव ही उनका मान।

दो॰- सर्व दोषों को 'त्यागना', माया को भी मीत।
जिन का यह स्वभाव हो, दैवी गुण वहां चीत॥8295

'शांति' पंदरहवां गुण है, तन मन से रह शांत।
सर्वत्र चाहें शांति, होय न चित्त भ्रांत॥8296

'अपैशुन' गुण देवों में जान, निंदक नहीं वे किसी के मान।
सब भूतों पर 'दया' कर पावें, तन मन से न कहीं सतावें।
'लोलुपता' अंश मात्र न होय, मन में लालच आये न कोय।
'मृदु स्वभाव' उनका हो ऐसा, सर्वश्लाघा योग्य हो जैसा।
उनमें 'ह्री' भी गुण जन देखें, लज्जाशील उन्हें उल्लेखें।
सदा रहें गंभीर वे ऐसे, व्यर्थ की चेष्टा हो न जैसे।
यह गुण 'अचपलता' कहलाये, दैवी स्वभाव में देखी जाय।

देव 'तेजस्वी' जन कहावे, शक्ति उसकी प्रकट हो पावे।
'क्षमा' उन का भूषण जानो, क्षमाशील देवों को मानो।
विपत्तियों में भी न घबरावें, धैर्य गुण को देव अपनावें।
'धृति' विशेष गुण उनमें भाई, देवों में जो देखा जाई।
बाहर भीतर से रहते शुद्ध, 'शौच' गुण जो देव प्रबुद्ध।
सब को मित्र अपना मानें, 'द्रोह' का तो नाम न जानें।
उन्हें 'मान' की न इच्छा भाई, निर्मान रहना उन्हें सुहाई।

दो०- देवों का स्वभाव कहा, अब असुरों का जान।
देव बनें हम असुर न, राखें सदैव ध्यान॥8297

आसुरी संपद हो जो भाई, सुनिये उस को अब चित्त लाई।
गीता में है सभी बखाना, अवगुणों का एक ख़ज़ाना।
उस से बच कर जो जन चाले, प्रभु कृपा से मोक्ष को पा ले।
[1]पंदरह (15) आसुरी संपद जान, क्रमशः उस के नाम पहचान।
असुरों का लो जीवन जान, 'कर्तव्य' आदि का न हो ज्ञान।

---

1. पंदरह प्रकार की आसुरी संपद् - (गीता 16.7-12)
   1. प्रवृत्ति निवृत्ति से अपरिचित
   2. शौच का अभाव
   3. आचार का अभाव
   4. सत्य का अभाव
   5. असत्य प्रतिष्ठा
   6. जगदाहुरनीश्वराः
   7. उग्रकर्माणाः
   8. क्षयायजगतोऽहिताः
   9. दुष्पूरंकाममाश्रिताः
   10. दम्भमानमदान्विताः
   11. अशुचिव्रिताः
   12. चिन्ताम्परिमेयां उपाश्रिताः
   13. कामोपभोगपरमाः
   14. आशापाशशतैर्बद्धाः
   15. काम क्रोध परायणः

यह तो प्रथम दोष है भाई, सुनो दूजा भी चित्त लाई।
दूजा दोष न 'शौचाचार', शुद्धि अशुद्धि का नहीं विचार।
तीजा दोष 'आचार' का मीत, अच्छा बुरा इक सम लें चीत।
'सत्य' का गुण नहीं पहचानें, सत्य असत्य में फरक न जानें।

दो०- इस प्रकार के दोष हों, जिन नरन में मीत।
मोक्ष किमि उन को मिले, अथवा स्वर्ग लो चीत॥8298

'असत्य में प्रतिष्ठा', जिन जनन की मीत।
उनका असत्य आचार, जीवन में लो चीत॥8299

'ईश्वर को नहीं मानें', कि जग विधाता सोय।
कहें सृष्टि जो है दीखती, नर नारिन से होय॥8300

'उग्र कर्म' वे करत हैं, वैरी जग के मीत।
'नाश करें' वे जगत का, ऐसी उन की रीत॥8301

'कामनाओं' से भरे रहें, उन के जानो चित्त।
हों कभी न तृप्त वे, कामनाएं जो मित्त॥8302

तन मन से 'अशुद्ध' रहें, जग में मेरे मीत।
दम्भ मान और मोह, रहें सदा उन चीत॥8303

दम्भ मान मदान्विता, सदा रहत उन चित्त।
विचरत वे संसार में, जो असुर हैं मित्त॥8304

मैले उनके चित्त भी, आसुरी उन के क्षत।
सिद्धान्त उनके मिथ्या, लेश नहीं है सत॥8305

चिन्ताओं से ग्रस्त वे, अन्त काल तक होंय।
असुर जानो वे जगत में, संपद जिन की सोय॥8306

'कामोपभोगपरम' वे, रहते कामासक्त।
सुख इसी को मानते, भोगों में अनुरक्त॥8307

'आशापाशशतैर्बद्धाः', काम भोग की चाह।
संग्रह करें अन्याय से, पाप की न परवाह॥8308

काम क्रोध परायण, ऐसे असुर अनेक।
दुखी करें वे जगत को, बढ़ एक से एक॥8309

कृष्ण चन्द्र भगवान ने, बखान कीन स्वभाव।
श्रवण करो अब वे भी, असुरों के जो भाव॥8310

कहें मिला अभी इतना, संतोष नहीं है तात।
मेरी दृष्टि में बहुत कुछ, आगे पाऊँ भ्रात॥8311

हनन किया इस शत्रु का, और हनूँगा मीत।
मुझ में जो हैं खूबियां, तुम्हें नहीं प्रतीत॥8312

मैं हूँ ईश्वर जगत का, भोगूं मैं बहु भोग।
सिद्धों का भी सिद्ध हूँ, यह जानें सब लोग॥8313

बलशाली मैं हूँ धनी, मेरा कुल महान।
मिले न कोई जगत में, मेरे जो समान॥8314

मोह जाल में ग्रस्त हो, करता इमि प्रलाप।
करूं यज्ञ मैं दान करूं, सभी करूँगा आप॥8315

इस विध चित्त भ्रांत जन, मोह के जाल ग्रस्त।
गिरें नरक में जाय कर, कामी भोगी मस्त॥8316

इमि धनमान मदान्वित, नाम मात्र के यज्ञ।
अविधिपूर्वक वे करत हैं, आसुरी जन अल्पज्ञ॥8317

अहंकार बल दर्प में, काम क्रोध विलीन।
भक्त न उन को जानिये, सभी वे भक्ति हीन॥8318

आत्म द्वेषी जानिये, वे सभी नर नार।
असुर ही बन पायेंगे, वे जन बारं बार॥8319

हे अर्जुन तुम जान लो, तीन नरक के द्वार।
काम क्रोध व लोभ को, त्यागो हर प्रकार॥8320

तीन तामसी द्वार ये, इन से हो कर मुक्त।
परम गति को पात जन, हो योग में युक्त॥8321

शास्त्र विधिम् उत्सृज्य जो, कामाचारी होय।
सद्गति नहीं पाय वह, अधम गति को गोय॥8322

क्या कर्म क्या अकर्म है, शास्त्र होय प्रमाण।
चले शास्त्रानुसार जो, हो उस का कल्याण॥8323

शास्त्र शब्द पण्डित सुन पाया, प्रभु जी को निज भाव बताया।
शास्त्रोक्त जो कर्म कर पायें, और न चित्त में श्रद्धा लायें।
उस कर्म का फल क्या मीत, प्रश्न यह उपजा है मम चीत।
प्रभु सुन कर पण्डित की बात, कहा प्रश्न यह उत्तम तात।
इस विषय को आगे देखें, गीता का मत वहां पर पेखें।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'दैवासुरसंपद्विभाग योग'
नाम - सोलहवां अध्याय

सतरहवां अध्याय

'श्रद्धात्रय विभाग योग'

दो:- घोर तिमिरांधकार से, है घिरा संसार।
शास्त्रों के प्रकाश में, चल सकें नर नार॥8324

शास्त्र दिखायें राह उसे, श्रद्धा जिस मन होय।
श्रद्धा जिस मन है नहीं, भटक जायगा सोय॥8325

कहा अर्जुन ने हे भगवान, तुम से चाहता हूँ मैं ज्ञान।
शास्त्र विधि नहीं जाने जोय, कर्म करे श्रद्धा से सोय।
उस की निष्ठा क्या हम जानें, सत्त्व मानें या राजस जानें।
उत्तर थे जो कृष्ण दे पाय, सुनु पण्डितवर वह मन लाय।
जैसा जिसका होय स्वभाव, श्रद्धा का वैसा ही हो भाव।
तीन प्रकार की श्रद्धा जानो, सात्विक राजस तम पहचानो।
श्रद्धा का ही रूप जन होय, जो श्रद्धा उसे जानो सोय।
यज्ञ दान तप आदि जो भी होय, जैसी श्रद्धा फल वैसा होय।
प्रभु ने पण्डित को समझाया, विषय गूढ़ को उन कथ पाया।
प्रथम सुन लो 'पूजा' की बात, गीता में जो लिखा है तात।
गीता में जो ज्ञान है मीत, जग में मिलत न कहीं लो चीत।

दो०- पूजा सात्विक जो करे, पूज्य हों उस के देव।
शास्त्र विधि से कार्य हो, गोब्राह्मण की सेव॥8326

राजस जन राक्षसों को पूजें, तामसी भूत प्रेत ही पूजें।
आसुरी भाव उन सब का होय, घोर तप भी करते सोय।
निज शरीर को वे सुखावें, आत्मा को न लख वे पावें।
आहार की अब कथ रहे बात, वह भी तीन प्रकार का तात।

आहार

सात्विक आहार

तीन प्रकार का आहार भी होय, सात्विक आहार सुनो है जोय।
पण्डितवर मैं वह बतलाऊँ, गीता में जो वर्णित पाऊँ।
दीर्घायु जो कर दिखलाये, बुद्धि वा बल को जो बढ़ाये।
निरोगता को जो देने वारा, सुखी भी जन को करने वारा।
स्निग्ध और रसीला होय, सात्विक आहार कहावे सोय।

राजसिक आहार

राजसिक आहार जो कहाये, दुखी जीव को वह कर पाये।
खट्टा कड़वा आहार जो होय, लवण व अति ऊष्ण भी सोय।
रूखा और दाहकर आहार, करत दुखी वह बहु प्रकार।
दुख चिन्ता व रोग ले आये, उस आहार से जन बच पाये।

तामसिक आहार

तामसिक जन जिसे करें प्यार, पण्डित सुनो अब वही आहार।
बासी और दुर्गन्ध से युक्त, अधपका और सुरस से युक्त।
उच्छिष्ट और अपवित्र जोय, तामसिक जनन को प्रिय हो सोय।

यज्ञ

सात्विक यज्ञ

यज्ञ संबंधि कहें अब बात, जिमि कथा भगवान हे तात।
सात्विक यज्ञ उसे कह पावें, फल की इच्छा न जिस में लावें।
विधिपूर्वक जो यज्ञ हो पाये, सात्विक यज्ञ वह ही कहाये।
कर्तव्य समझ यज्ञ कर पायें, सह श्रद्धा सुकर्म कर पायें।
सात्विक यज्ञ वही कहावे, प्रभु की कृपा कर्ता पावे।

राजसिक यज्ञ

राजसिक यज्ञ की सुन लो बात, सावधान हो कर हे मम तात।
दम्भार्थ यज्ञ करे जो मीत, राजसिक यज्ञ लो वह चीत।
फल की जहां कामना होय, राजसिक यज्ञ कहावे सोय।

तामसिक यज्ञ

दो०- स्वभाव वश जन तामसी, करत जो यज्ञ मीत।
श्रवण करो अब तुम वही, कर एकाग्र चीत॥8327

श्रद्धाविरहित यज्ञ करें, तामसिक जन लो जान।
विधि का नहीं ज्ञान कुछ, न मन्त्र का सन्मान॥8328

दक्षिणा का तो नाम न, अन्न दान से हीन।
यज्ञ तामसी जनन का, पण्डितवर लो चीन॥8329

तप

तप तीन प्रकार का जान, सात्विक राजसिक तम पहचान।
तप 'शरीर' से भी हो पाये, 'मन' से भी जन वह कर पाये।
'वाणी' का भी तप कहलाय, तपस्वी तन मन तप में लाय।
सात्विक जन जो तप कर पाय, देव द्विज गुरु की सेव कमाय।
ब्रह्मचर्य वा अहिंसा भाई, तप में इन की हो प्रभुताई।
शौच व सरलता दोनों जान, 'शारीरिक' तप की है पहचान।
'वाणी' का तप आवश्यक मीत, इस की साधना हो सप्रीत।
वाक्य अनुद्वेगकारी भाई, तपस्वी जन का चिन्ह कहाई।

दो०- स्वाध्याय भी जान लो, वाणी का तप मीत।
शास्त्र पढ़े जन प्रेम से, स्वाध्याय की रीत॥8330

'मानसिक' तप बहु गुणकारी, शांति मिले इस से बहु भारी।
'संयम' इस में चार हैं आये, 'मनप्रसाद' प्रथम कहाये।
दूजा 'सौम्यत्व' होय भाई, तीजा 'मौन' कथन में आई।
'भाव की शुद्धि' चौथा जानो, मन के तप ये सब पहचानो।
सात्विक जन जो तप कर पाये, इन 'गुणों' को ध्यान में लाये।
राजस जन के भिन्न विचार, चाहे वह मान और सत्कार।
तामस जन जब तप कर पाये, पर पीड़ा हो चित्त में लाये।
दूसरों का अनिष्ट हो भाई, उन के मन में रहे समाई।

दान

दान की चर्चा अब कर पायें, गीता में जिमि वर्णित पायें।
सात्विक दान वही कहाये, जन अनुपकारी को दे पाये।

देश और काल वा पात्र देख, सात्विक दान का मिले उल्लेख।
राजसिक दान वह कहलाय, प्रत्युपकार का भाव जब आय।
दुखी हो कर दीना दान, वह भी राजसिक ही लो मान।
तामसिक दान उसी को जानो, देश काल बिन देखे मानो।
अपात्र को भी दीना दान, वह भी तामसिक ही लो मान।
तिरस्कार पूर्वक जो दे पाना, दान तामसिक है वह जाना।

दो०- यज्ञ दान और तप सब, विधि पूर्वक जब होय।
प्रभु के समर्पित भी करे, मोक्ष प्रदायी सोय॥8331

सुन पण्डित मन उपजी बात, और प्रभु से कहा हे तात।
यज्ञ, दान, तप ये सब काम, मोक्ष प्रदायी किमि हों राम।
जन सन्यासी मोक्ष को पाय, कर्म बन्धन से जभी छुट पाय।
मेरे मन यह संशय नाथ, यह निवारण कर करें सनाथ।
कहा प्रभु यह संशय तेरा, अन्तिम पाठ में हो निवेरा।
गीता तो तुम सब सुन पाई, अन्तिम पाठ पढ़ें अब भाई।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'श्रद्धात्रय विभाग योग'
नाम - सतरहवां अध्याय

अठारहवां अध्याय

'मोक्ष सन्यास योग'

यज्ञ दान और तप हैं जोय, क्या मोक्ष मार्ग में बाधक होंय।
प्रभु जी पण्डित को बतलायें, कृष्ण चन्द्र का मत जतलायें।

दो०- कर्म और सन्यास का, जो संबंध है मीत।
इस अध्याय में स्पष्ट हो, श्रवण करो ला चीत॥8332

प्रश्न अर्जुन का था यह मीत, सन्यास की होती कैसी रीत।
त्याग किसे कहें भगवान, चाहूँ मैं इस का तुझ से ज्ञान।
कहा कृष्ण सन्यास वह जान, काम्य कर्मों का न्यास पहचान।
कर्म फल का त्याग जो भाई, त्याग वही हो फल प्रदायी।
इच्छित कर्मों का जो न्यास, नाम उसी का है सन्यास।
विद्वानों के जो भिन्न विचार, श्रवण करो मुझ से इस बार।
कुछ जन कहत सन्यासी सोय, सभी कर्मों को त्यागे जोय।
उन का मत तो ऐसा होय, अन्य विद्वान न मानें सोय।
वे विद्वान यह कह पायें, यज्ञ दान तप त्याग न पायें।
अपना निश्चय मैं कथ पाऊँ, पहले 'त्याग' क्या हो समझाऊँ।
यज्ञ दान तप जो कर्म, त्यागन योग नहीं वे कर्म।
कर्म न त्यागे संग त्यागे, फल न त्यागे फल इच्छा त्यागे।
मैं तो मानूं इस को त्याग, मैं न मानूँ कर्म का त्याग।
मोह वश कर्म त्याग जो पायें, तामस त्याग उसे कथ पायें।

कर्म करने में दुख बहु होय, कर्म त्यागें इस कारण जोय।
उन का त्याग राजस हि मानो, उस त्याग को न सन्मानो।
सात्विक त्याग जानो सोय, फल की इच्छा न जिस में होय।

दो०- अकुशल कर्म में द्वेष न, न कुशल में अनुराग।
उस पुरुष का जान लो, सात्विक होय त्याग॥8333

देह धारी न कर सकें, कर्म का पूर्ण त्याग।
कर्म के फल का चाव न, जानो उस का त्याग॥8334

वास्तव सन्यासी वह ही होय, कर्म फल को चाहे न जोय।
कर्म के फल होते हैं तीन, अनिष्ट, इष्ट और मिश्रित चीन।
कर्म का फल न सन्यासी पाय, जीवे या परलोक में जाय।
एक बात लो और भी जान, कर्म के कारण पांच लो मान।
कर्ता, करण, अधिष्ठान लो जान, चेष्टाएं और दैव पहचान।
यही तो करते हैं सब काम, आत्मा करता न कुछ भी काम।
आत्मा जान अकर्ता भाई, यह ज्ञान जब मनहिं समाई।

दो०- सब लोगों को मार कर, भी न लागे दोष।
बन्धन उस को न पड़े, वह रहत निर्दोष॥8335

ऐसा पुरुष वही हो पाये, अहंभाव न जिस मन आय।
बुद्धि कर्म में न होवे लिप्त, योगी वह होय पुरुष अलिप्त।

दो०- कर्म सम्बन्धी और भी, गीता देत ज्ञान।
श्रवण करो अब तुम वही, हे पण्डित विद्वान॥8336

कर्म सम्बन्धी ज्ञान जो, और मोक्ष का मीत।
उसे भी अब करो श्रवण, प्रभु पग ला कर चीत॥8337

अन्तिम अध्याय मोक्ष का, व सन्यास का जान।
विषय इसी का कृष्ण ने, दीना बहुत ज्ञान॥8338

गीता जैसा ज्ञान तो, मिले कहीं न मीत।
श्रवण करो अब उसे तुम, प्रभु पग ला कर चीत॥8339

गीता जैसा ग्रंथ तो, हुआ न होगा मीत।
संदेश अंतिम व्यास का, भी सुनना ला चीत॥8340

त्रिकाल दर्शी व्यास मुनि, कृष्ण चन्द्र भगवान।
इन जैसा नहीं होयगा, कभी भी इस जहान॥8341

योग कृष्ण का है कथा, व्यास ऋषि संपूर्ण।
जिज्ञासुन की जिज्ञासा, भई है इस से पूर्ण॥8342

और ज्ञान जो व्यास ने, है अन्त जो दीन।
संक्षेप से है वह कथा, ज्ञान समुद्र चीन॥8343

क्रम पूर्वक करेंगे हम विचार, कृष्ण रूप को चित्त में धार।
सुन्दर छवि जो उन की प्यारी, चर अचर चित्त मोहन हारी।

ज्ञान

प्रथम बात जो वहां है आई, ज्ञान परिभाषा कृष्ण बताई।

ज्ञान तीन प्रकार का होय, सात्विक राजस तामसिक सोय।
सात्विक ज्ञान उसी को जानें, सर्वत्र ईश्वर को पहचानें।
भूत पदार्थ जो जग माहीं, सभी में ईश्वर अंश लखाहीं।
राजसिक ज्ञान वह हो मीत, ईश्वर रूप न होय प्रतीत।
भूतों में न एकता देखे, अपने भाव अनुसार हि पेखे।
तामसिक ज्ञान उस के माहिं, होय आसक्ति देह के माहिं।
तत्व ज्ञान न उसे सुहावे, अल्प बुद्धि में न कुछ आवे।

कर्म

कर्म की भी अब सुनिये बात, उस के भी तो भेद हैं तात।
सात्विक राजस तामसिक जान, त्रिविध कर्म होते पहचान।
सात्विक कर्म उस को मानो, चार गुणों से युक्त जो जानो।
शास्त्र विदित कर्म हो भाई, पहला गुण यही कहायी।
आसक्ति रहित कर्म जो होय, सात्विक कर्म जानो सोय।
राग द्वेष से रहित जो कर्म, सात्विक जानो वह ही कर्म।
फल की इच्छा न चित्त माहिं, सात्विक कर्म जानो वह साईं।
राजस कर्म के तीन हैं रूप, तीन का वर्णें यहां स्वरूप।
कामना युक्त जो होता कर्म, राजसिक जानो वह है कर्म।
अति परिश्रम जिसमें होय, राजसिक कर्म जानो सोय।
जिस कर्म में अहंकार हो भाई, वह ही राजसिक कर्म कहाई।
सुनो अब तामस कर्म की बात, तामस कर्म निषिद्ध है तात।
तामस कर्म में पांच हैं दोष, करे जन 'मोह' के वश मदहोश।
दूजा दोष भी लेवो जान, हिंसा इस में होत प्रधान।

तीजा दोष अभी हम देखें, कर्म करें बिन पौरुष पेखें।
चौथा दोष जानो सोय, तामसिक कर्म में हानि होय।
पंचम दोष सभी जन देखें, करें कर्म परिणाम बिन पेखें।

कर्ता

कर्ता के भी भेद बतलाये, कृष्ण चन्द्र ने गीता गाये।
कर्ता तीन प्रकार का होय, सात्विक राजस तामसिक सोय।
सात्विक कर्ता के गुण जो मित्त, उन्हें स्मरण राखें निज चित्त।
पांच गुण हैं उस के गाये, गीता में वे सभी हैं आये।
कर्ता संग रहित जो होय, सात्विक जानो कर्ता सोय।
उस में लेश न हो अहंकार, दूजा गुण यह लो मन धार।
सत्कर्ता न धैर्य को त्यागे, बाधा चाहे उस मग लागे।
सिद्धि असिद्धि में रहत समान, सात्विक कर्ता उस को मान।
परम उत्साही जो जन होय, सात्विक कर्ता जानो सोय।
राजसिक कर्ता का होय बखान, पांच विशेषता उस में जान।
आसक्तियुक्त वह होता भाई, फल की इच्छा चित्त समाई।
लोभी होता वह जन विशेष, त्यागे लोभ न वह कभी लेश।
हिंसक स्वभाव भी लेवो जान, अशुद्धाचारी उस को मान।
हर्ष व शोक से रहत आक्रान्त, ऐसा जन न हो कभी शान्त।
तामसिक कर्ता ठीक न भाई, उस में गुण न दीखे राई।
उस के दोष सात गिनाये, इस से इक जो मंद कहाये।
अयुक्त और अशिक्षित जान, जन असभ्य वह उसे पहचान।
वह तो धूर्त पुरुष हो भाई, आय न काम किसी के राई।

आलसी पुरुष वह लेवो जान, विषाद ग्रस्त भी उस को मान।
दीर्घ सूत्री होत वह भाई, उस में गुण न होते राई।

बुद्धि

बुद्धि के यहां भेद बताये, कृष्ण चन्द्र ने गीता गाये।
बुद्धि तीन प्रकार की होय, सात्विक राजस तामसिक सोय।
सात्विकी बुद्धि वह कहाये, प्रवृत्ति निवृत्ति में भेद लखाये।
कार्य, अकार्य में जाने भेद, भयाभय को भी वह बिन खेद।
बन्ध मोक्ष की ठीक पहचान, सात्विकी बुद्धि वह लो जान।
राजसिक बुद्धि उस को जाने, धर्म अधर्म में भेद न माने।
कार्य अकार्य की नहीं पहचान, राजसिक बुद्धि वह लो जान।
तामस बुद्धि में दोष यह होय, अधर्म भी धर्म माने सोय।

धृति

धृति के भेद भी हैं बतलाये, कृष्ण चन्द्र ने गीता गाये।
धृति तीन प्रकार की होय, सात्विकी राजस तामसिक सोय।
सात्विकी धृति वही कहलाय, स्थिर जो मन को कर दिखलाये।
प्राण को उखड़ने न जो देय, सात्विकी धृति जान जन लेय।
इन्द्रिय संयम आवश्यक मीत, सात्विकी धृति ले इन्द्रिन जीत।

दो०- शक्ति धृति है योग की, बिन इस कुछ न होय।
दृढ़ करे मन प्राण को, इन्द्रिन को भी सोय॥8344

राजसी धृति वही कहाय, जन में जो उत्साह को लाय।
राजसिक धृति जब काम में लायें, धृति धैर्य को दृढ़ कर पायें।

जग जीवन में जन सुखी हो जाय, धर्म अर्थ काम सब कुछ पाय।
बिन धृति जन निर्बल होय, सफलता जीवन में न गोय।
तामसिक धृति दोष उपजाये, मार्ग उलटा वह जन ग्राहे।
पांच दोष जन में यह लाय, निद्रा में जन देत सुलाय।
दूजा दोष है भय उपजाय, शोक ग्रस्त जन सदा रह पाये।
[1] विषादी जीवन जन का होय, मद में ही वह होश विगोय।

दो०- उलटे मग में डालती, तामसिक धृति लो जान।
सात्विकी राजस ठीक हैं, जन में लातीं प्राण॥8345

सुख

दो०- सुख को चाहत जगत सब, वह भी त्रिविध होय।
सात्विक राजस तामसी, बंटा है इन में सोय॥8346

सात्विक सुख लो इस विध जान, अभ्यास से उत्पन्न वह लो मान।
दुख का अन्त जिस से होय, सात्विक सुख जानो है सोय।
राजसिक सुख की कहें अब बात, इन्द्रिन विषय से उत्पन्न तात।
आरंभ में अमृतवत वह होय, परिणाम में विष वही जन गोय।
तामसिक सुख जो कुछ लाये, गीता में वह कृष्ण बतलाये।
इस का आरंभ और अन्त समान, आत्मा पर मोह डाले जान।
निद्रा आलस प्रमाद जोय, उन से उत्पन्न होता सोय।
निद्रा आलस लगें सुखदायी, नाश जीवन का इन से भाई।

1. विषाद - Depression

कर्म-धर्म

भगवान सृष्टि जो रच पाई, भिन्न वर्णों में बांट दिखाई।
अपना धर्म जन सभी निभावें, सुन्दर रूप से जग चलावें।

दो०- ब्राह्मण एक वर्ण होय, दूजा क्षत्रिय जान।
तीसरा वर्ण वैश्य है, [1]वेद भी करें बखान॥8347

ब्राह्मण वर्ण का कर्म बताया, शम दम तप का राह दिखाया।
शौंच क्षमा और आर्जव मीत, ब्राह्मण के गुण लो तुम चीत।
ज्ञान विज्ञान आस्तिक्य भाई, ब्राह्मण के गुण विशेष कहाई।
ब्रह्मकर्म उस का गुण खास, दैवी कर्मन में विश्वास।
क्षत्री के भी कर्म बताये, शौर्य तेज धृति कथ पाये।
युद्ध में दक्षता उस की होय, युद्ध से भागे न कभी सोय।
दान में उस का रहता हाथ, प्रभुत्व भाव सदा उस पास।
वैश्यों के भी कर्म लो जान, कृषि गौरक्ष्य वाणिज्य पहचान।
समाज को यह कृष्ण जताया, अपना अपना धर्म बताया।
अपने कर्मन में लग जाये, जीवन में वह सिद्धि पाये।
विधाता कर्म विभाजन कीन, कर्म से पूजा जन की चीन।
जैसा भी निज कर्म हो भाई, उस से गति जन की हो जाई।
जन का कर्म स्वभावानुसार, त्यागे जो, दुख पाये अपार।
सहज कर्म सदोष भी होय, त्याग करे नहीं उस को सोय।
अग्नि में धूआं होता जैसे, दोष कर्मन में भी होता तैसे।

---

1. देखें ऋग्वेद (पुरुष सूक्त) मण्डल 10, सूक्त 90

मोक्ष सन्यास

कर्म-भक्ति

निष्काम कर्म योग का लक्ष्य, सन्यास इसी को कहते दक्ष।
कर्म से ही सिद्धि जन गोय, असक्त बुद्धि से करे जो सोय।
योगी जितात्मा लेवो जान, योगी विगतस्पृह भी मान।
यह योग जो कृष्ण बतलाय, उच्च स्थिति में जन को ले जाय।

दो०- उस स्थिति को पाय कर, जन ब्रह्म हो जाय।
पराकाष्ठा वह ज्ञान की, विरला ही जन पाय॥8348

उस स्थिति की प्राप्ति, वही सकत जन पाय।
अधोलिखित जो हैं गुण, जन जभी अपनाय॥8349

[1] विशुद्ध बुद्धि जन की होय, नियमित भोजन करे जन सोय।
सेवन भी शुद्ध देश का होय, करे त्याग विषयों का सोय।
इन्द्रियों का संयम कर पाय, वैराग्य भाव सदा अपनाय।
परिग्रह का वह करे त्याग, ध्यान योग में जाय लाग।
ब्राह्मी स्थिति जन जब पा जाय, प्रसन्नात्मा सदा रह पाय।
शोक, आकांक्षा देता त्याग, सब प्राणी उसे इक सम लाग।
ईश्वरतत्व को जानन पाय, ईश्वर में ही जात समाय।

---

1. ब्रह्म स्थिति की प्राप्ति हेतु कुछ गुण- गीता 18.51-53
   1. विशुद्ध बुद्धि 2. नियमित भोजन 3. शुद्ध देश का सेवन
   2. विषयों का त्याग 5. इन्द्रियों का संयम 6. वैराग्य
   7. परिग्रह का त्याग 8. ध्यान योग परायण

सभी कर्मों को करता सोय, परायण ईश्वर के वह होय।
जिस स्थिति को वह पा जात, अव्ययी शाश्वत पद कहलात।

दो०- देकर दिव्य उपदेश यह, कहा अर्जुन को नाथ।
हे अर्जुन सब कर्म तू, अर्पण कर मम हाथ॥8350

लगा कर बुद्धि योग में, मुझ में रख निज चित्त।
निरन्तर कर तू योग को, हे अर्जुन मम मित्त॥8351

यदि तुम्हारा हो सदा, मेरे चरणि चित्त।
संकट सब तर जायगा, मम कृपा से मित्त॥8352

सुनेगा यदि अहंकार वश, न तू मेरी बात।
होगा नाश तुम्हारा, यह भी सुन लो तात॥8353

कहो यदि अहंकार वश, युद्ध करूँ मैं नाहिं।
छोड़ सको न युद्ध यह, प्रकृति तुझे लड़ाहिं॥8354

वश तुझे कर पायगा, अपना ही स्वभाव।
हृदय में जो ईश बसे, उस का यह प्रभाव॥8355

सब भूतों के हृदय में, ईश्वर बैठा मीत।
घुमा रहा है सबन को, यन्त्र वत लो चीत॥8356

उस ईश्वर की शरण में, रहो सदा तुम मीत।
कृपा उस की होय जब, मिले शांति लो चीत॥8357

गुप्त से गुप्त ज्ञान यह, तुझ को दीनन मीत।
इस पर तू विचार कर, कर जो अब तव चीत॥8358

सब से भी अति गुप्ततर, और बात कहूँ मीत।
प्रियतम मेरे हो तुम, जो कहूँ लो चीत॥8359

मुझ में ही तू मन धर, मेरा ही बन भक्त।
मेरे हित ही यज्ञ कर, मुझ में रह आसक्त॥8360

मेरा सत्य वचन यह, तुझ से मेरा प्यार।
मुझ में ही समा जाओगे, तेरा मैं आधार॥8361

सब धर्मों को त्याग कर, आ मेरी तू शरण।
पाप सभी तर जायगा, हो शुद्ध आचरण॥8362

हे अर्जुन जो कुछ कहा, क्या सुना दत्त चित्त।
नष्ट हुआ क्या मोह तव, हे धनञ्जय मित्त॥8363

कहा अर्जुन हे अच्युत, नष्ट भया अज्ञान।
मैं करूँगा वह सभी, जो आज्ञा भगवान॥8364

कहा पण्डित हे योगिवर, धन्य भया हूँ मीत।
संशय मेरे मिट गये, सुन कर भगवद्गीत॥8365

योगिवर तव पास है, दिव्य दृष्टि भगवान।
मुझे सुनाया आप ने, गुप्त गीता का ज्ञान॥8366

योगेश्वर के वचन को, योगी समझे मीत।
साधारण बुद्धि से प्रभो, आ सकत न चीत॥8367

कहा प्रभु हे मित्रवर, मेरा यह विश्वास।
गीता में जो ज्ञान है, वह ज्ञान है खास॥8368

अन्यत्र न यह मिल सकत, इस जगत में मीत।
सब शास्त्रों का सार यह, मेरे मन प्रतीत॥8369

अब तुझे इक बात कहूँ, कथी जो अन्त व्यास।
मुनीश्वर का संदेश वह, है जगत को खास॥8370

कहा पण्डित वह है क्या, बताओ मेरे मीत।
व्यास का संदेश भी, जग को हो प्रतीत॥8371

कहा प्रभु मैं वह कहूँ, संस्कृत के ही माहिं।
गीता के जो अंत में, व्यास कहा जग ताहिं॥8372

यत्र योगेश्वरः कृष्णो यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्रीर्विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्मम॥ गीता 18.78

जहां योगेश्वर कृष्ण हो, धनुर्धारी व पार्थ।
श्री विजय विभूति होय, ध्रुवनीति भी साथ॥8372क

पण्डित नत मस्त कथ पाया, और प्रभु चरणि शीश झुकाया।
हे प्रभो किमि करूँ आभार, आप से मिला गीता का सार।
गीता बहुबार थी पढ़ पाई, सुनी जो अब मम आँख खुल पाई।

गुरुवर अब मैं आज्ञा चाहूँ, काशी को अब लौट के जाऊँ।
जैसी आज्ञा हो महाराज, करूंगा वैसा ही मैं काज।
कहा प्रभु तुम बेशक जाओ, सुख से काशी पहुँच तुम पाओ।
आज्ञा पाय पण्डित उठ पाया, कर प्रणाम वह तभी सिधाया।
प्रभु जी भी निज कक्ष में आये, नित्य कर्म फिर वे लग पाये।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'मोक्ष सन्यास योग'
नाम - अठारहवां अध्याय

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु
ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे श्रीकृष्णार्जुन संवाद सम्पूर्ण।

दो०- प्रभु कृपा से पूर्ण भया, गीता का यह ज्ञान।
इस 'सेवक' से लिखवाया, है जो महा अनजान॥8373

अब लिखूँ इस ज्ञान को, गद्य में ही नाथ।
रहना मेरे नाथ जी, हर दम मेरे साथ॥8374

ॐ नमः श्री राम लाल प्रभु जी पर ब्रह्मणे नमः

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र

गद्य भाग

दो०- राम प्रभु लिखवा रहे, गीता का अब सार।
गद्य रूप में जान लो, जिस में ज्ञान अपार॥8375

'पूर्व परिचय'

योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज अपने योग साधन आश्रम ऋषिकेश में विराजमान थे। उनके पास एक पण्डित जी आये और योग्य शिष्टाचार उपरान्त बैठ कर पण्डित जी ने अपना परिचय दिया।

पण्डित - हे योगिवर, आप की ख्याति श्रवण कर मैं काशी से चलकर आया हूँ। वहीं पर मैंने विद्याध्ययन किया है। द्वापर युग में जो गीता का उपदेश भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को दिया था और जिसे महर्षि व्यास ने अपने ग्रंथ श्रीमद्भगवद्गीता में लिपिबद्ध किया है उस ग्रंथ पर विविध विद्वानों ने भाष्य लिखे हैं। उन सभी को देखकर मेरी बुद्धि चक्कर में पड़ गई है। योगेश्वर भगवान कृष्ण के महान उपदेश को मैं आप योगी के मुखारविंद से सुनने की इच्छा

रखता हूँ। कृपा कर मुझे सार रूप में गीता का रहस्य बतलायें और मेरी भ्रान्तियों को शांत करें। कहते हैं, ''गीता सब शास्त्रों का सार है।'' मैं आप से वही सुनने की इच्छा से इतनी दूरी से चलकर आया हूँ।

प्रभु जी - पण्डितवर आप ने ठीक ही सुना है। गीता प्रायः सभी शास्त्रों का सार है। वेद, उपनिषद और योग के ग्रंथ आदि सार रूप में हमें सभी गीता के अन्दर समाहित नज़र आते हैं। परन्तु मुख्य रूप में गीता योग शास्त्र है।

पण्डित - वह कैसे ?

प्रभु जी - स्पष्ट है कि गीता के रचयिता ने इसे स्वयं योग शास्त्र का नाम दिया। गीता के प्रत्येक अध्याय के अन्त में लिखा है 'योग शास्त्रे श्री कृष्णार्जुन संवादे' और इसके साथ ही गीता के अठारह अध्याय हैं और प्रत्येक अध्याय का नाम योग के साथ जुड़ा हुआ है। जैसे :-

सभी अध्यायों के नाम इस प्रकार से हैं-

1. विषाद योग
2. सांख्य योग
3. कर्म योग
4. ज्ञान कर्म सन्यास योग
5. कर्म सन्यास योग
6. आत्म संयम योग
7. ज्ञान विज्ञान योग
8. अक्षर ब्रह्म योग
9. राज विद्या राज गुह्य योग
10. विभूति योग
11. विश्वरूप दर्शन योग
12. भक्ति योग
13. क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग
14. गुण त्रय विभाग योग
15. पुरुषोत्तम योग
16. देवासुर सम्पद् योग

17. श्रद्धा त्रय विभाग योग 18. मोक्ष सन्यास योग

इस से स्पष्ट है कि महर्षि व्यास ने 'श्रीमद्भगवद्गीता' नाम से योग के एक विलक्षण शास्त्र की रचना की है।

पण्डित - आप ने गीता के विषय में जो स्पष्ट बात कही वह मैंने किसी के मुख से अभी तक नहीं सुनी। गीता के विषय में आप के और जो विचार हों मैं उन को भी सुनने का इच्छुक हूँ। कृपा कर बतलाएं।

प्रभु जी - गीता का उपदेश जो रणक्षेत्र के परिपार्श्व में दिया गया यह महर्षि व्यास की विलक्षण प्रतिभा का परिचायक है। श्री कृष्ण ने गीता का ज्ञान राजर्षियों के द्वारा क्रमपूर्वक चलता हुआ बतलाया है और व्यास ने संकेत दिया है कि संसार भी एक युद्धक्षेत्र है और संसार में रह कर कर्म योग करते रहना गीता का उपदेश है।

पण्डित - योगिवर! आप की गीता के प्रति यह दृष्टि बिल्कुल स्पष्ट है कि सांसारिक जीवन में गीता का उपदेश सदा के लिए सार्थक है। यदि आप का इसी प्रकार का विचार कुछ और हो तो वह भी कृपा कर बतलायें। आप का दृष्टिकोण गीता के प्रति अति प्रभावी है।

प्रभु जी - पण्डितवर ! गीता में व्यास ने कृष्णार्जुन के अतिरिक्त दो और पात्रों को सम्मिलित किया है। महर्षि व्यास ने उन द्वारा ऋषि पतंजलि कृत योग दर्शन के विभूति पाद की सिद्धियों की उपादेयता पर भी छाप लगा दी और नीति ग्रन्थों को भी सत्य दिखलाया।

पण्डित - वह कैसे, और वे दो पात्र जो कहे वे कौन से हैं ?

प्रभु जी - एक सञ्जय और दूसरा महाराज धृतराष्ट्र। सञ्जय दूर बैठे भी अपनी योग सिद्धियों द्वारा कृष्ण और अर्जुन के वचनों को सुन रहा है और रणक्षेत्र के

दृश्य को देख रहा है।

पण्डित - नीति की बात यहां कैसे आती है ?

प्रभु जी - नीति कहती है कि ''मूर्ख को ब्रह्मा भी नहीं समझा सकता'' और धृतराष्ट्र संतान मोह में अन्धा हुआ था। गीता का समग्र ज्ञान श्रवण कर के भी उस का मोह दूर नहीं हुआ।

पण्डित - गुरुवर, यह बात तो अभी तक किसी विद्वान की बुद्धि में नहीं आई। सचमुच महर्षि व्यास ने अपनी कुशाग्र बुद्धि से गीता में जो रहस्य समाविष्ट किये हैं वे आप जैसा योगी ही उस में देख सकता है। इस प्रसंग में मैं आप से और भी सुनना चाहता हूँ।

प्रभु जी - गीता में बहुत सी ऐसी बातें हैं जो सर्वसाधारण की दृष्टि में नहीं आईं। प्रसंग वश उन की फिर चर्चा करेंगे। अब हम गीता का अध्ययन क्रम पूर्वक करेंगे। परन्तु यह बात मैं आप को बतलाना चाहता हूँ कि प्रत्येक योग का ग्रंथ 'वैराग्य' से आरंभ होता है जैसे 'योग वसिष्ट' आदि और योग दर्शन में भी 'वैराग्य' को मुख्य माना है। महर्षि व्यास ने भी गीता को इसी प्रकार आरम्भ किया तथा प्रथम अध्याय का नाम 'विषाद योग' रखा।

प्रथम अध्याय

'विषाद योग'

चौ०- विषाद योग की सीख यह जान, युद्ध से हो संकोच महान।
अर्जुन जो विषाद दिखलाया, अन्त में वह सत्य हो पाया॥

कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में अठारह अक्षौहिनी सैना एकत्र थी। ग्यारह अक्षौहिनी कौरवों के पक्ष में और सात अक्षौहिनी पाण्डवों के पक्ष में। महारथी अपने-अपने शंखनाद कर युद्ध का संकेत दे रहे थे। अर्जुन भी अपने रथ में बैठा, गांडीव धनुष लिये युद्ध के लिए तैयार था। भगवान कृष्ण उस के सारथी थे। अर्जुन ने भगवान कृष्ण से कहा - मित्र, मेरे रथ को युद्ध भूमि के बीच में ले चलो ताकि देखूँ मैंने किन विपक्षियों पर बाण चलाने हैं और मेरे साथ इस स्थान पर कौन कहां पर हैं।

भगवान कृष्ण ने अर्जुन के रथ को लाकर ऐसे स्थान पर खड़ा कर दिया जहां से युद्धभूमि को अर्जुन भली प्रकार से देख सकता था। समग्र दृश्य को देख अर्जुन विषादग्रस्त हो गया और अपने सारथी भगवान कृष्ण को कहने लगा- "मैं नहीं लड़ूंगा। मेरा रथ यहां से ले चलो।" यहीं से श्रीकृष्णार्जुन संवाद "श्रीमद्भगवद्गीता" आरंभ होती है।

श्री प्रभु जी ने पण्डित से कहा - हे विप्रवर महर्षि व्यास सिद्ध योगी थे। वे धन्य हैं जिन्होंने अपने आश्रम में बैठ वह सारा ज्ञान अपनी "श्रीमद्भगवद्गीता"

में संग्रहीत किया जो अलौकिक दिव्य ज्ञान भगवान कृष्ण ने विषादी अर्जुन को दिया था और उस द्वारा उसके विषाद को दूर किया था।

पण्डित - योगिवर, इस से पूर्व कि मैं आप से वह दिव्य ज्ञान श्रवण करूँ मैं यह जानना चाहता हूँ कि अर्जुन ने श्री कृष्ण को युद्ध न करने का कारण भी बतलाया होगा। वह क्या था ?

प्रभु जी - हाँ, आपने ठीक पूछा है। अर्जुन ने एक-एक कर के ग्यारह युक्तियां, जो उस के विषाद का कारण थीं, भगवान कृष्ण को कहीं और धनुष बाण छोड़ कर रथ में एक ओर विषादग्रस्त होकर बैठ गया।

पण्डित - योगिवर वे युक्तियां क्या थीं। मैं आप के मुख से सुनना चाहता हूँ।

प्रभु जी - अर्जुन ने जो युक्तियां दीं वे इस प्रकार थीं :-

1. इस युद्ध की इच्छा वाले खड़े हुए स्वजन समुदाय को देखकर मेरे अंग शिथिल होते जा रहे हैं और मुख भी सूखा जाता है। मेरे शरीर में कम्पन हो रही है। (गीता 1.28-29)

2. मेरे हाथ से गाण्डीव भी गिर रहा है और त्वचा भी बहुत जलती है। (गीता 1.30)

3. मैं विजय को नहीं चाहता और राज्य तथा सुखों को भी नहीं चाहता। हमें राज्य से क्या प्रयोजन अथवा भोगों और जीवन से भी क्या प्रयोजन क्योंकि जिन के लिए राज्य भोग और सुखादिक इच्छित हैं वे ही ये सब धन और जीवन की आशा को त्याग कर युद्ध में खड़े हैं। (गीता 1.32-33)

4. गुरुजन, ताऊ, चाचे, लड़के और वैसे ही दादा, मामा, ससुर, पोते, साले तथा और भी संबंधी लोग हैं। इन सब को मारना मैं नहीं चाहता। (गीता 1.32)

5. तीन लोक के राज्य के लिए भी मैं इन को मारना नहीं चाहता। फिर पृथ्वी के लिए तो कहना ही क्या।

6. धृतराष्ट्र के पुत्रों को मार कर भी हमें क्या प्रसन्नता होगी। इन आततताइयों को मार कर हम कैसे सुखी होंगे। (गीता 1.36-37)

7. यद्यपि लोभ से भ्रष्ट चित्त हुए ये लोग कुल के नाश कृत दोष को नहीं देखते हैं परन्तु कुल के नाश करने से होते हुए दोष को जानने वाले हम लोगों को इस पाप से हटने के लिए क्यों नहीं विचार करना चाहिए। (गीता 1.38-39)

8. कुल के नाश होने से सनातन कुल धर्म नष्ट हो जाते हैं। धर्म के नाश होने से संपूर्ण कुल को पाप भी बहुत दबाते हैं। (गीता 1.40)

9. पाप के अधिक बढ़ने से कुल की स्त्रियां दूषित हो जाती हैं। स्त्रियों के दूषित होने पर वर्णसंकर संतानें उत्पन्न होती हैं। (गीता 1.41)

10. नष्ट हुए कुल धर्म वाले मनुष्यों का अनन्त काल तक नरक में वास होता है। ऐसा हमने सुना है। (गीता 1.44)

11. यदि मुझ शस्त्र रहित, न सामना करने वाले को शस्त्रधारी धृतराष्ट्र के पुत्र रण में मारें तो वह मरना भी मेरे लिए अति कल्याणकारी होगा। (गीता 1.46)

पण्डित - योगिवर, अर्जुन की सारी युक्तियों में बहुत सार है। उसका विषादग्रस्त होना स्वाभाविक ही था। अपने कुल का नाश कोई नहीं चाहता। इन युक्तियों का उत्तर भगवान कृष्ण ने जो दिया मैं आपके मुख से ही वह सुनना चाहता हूँ।

प्रभु जी - पण्डितवर। विषादग्रस्त अर्जुन को कर्तव्य पालन के जो उपदेश दिये और उसके विषाद को दूर करने के लिए जो कुछ किया वही श्रीमद्भगवद्गीता है जो आगामी सतरह अध्यायों में हम पढ़ेंगे।

अब अगले अध्याय में चलते हैं जिस का विषय है 'सांख्य योग'। ज्ञान द्वारा ही विषाद से मुक्ति पायी जा सकती है!!

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'विषाद योग' नाम - प्रथम अध्याय

दोहा

"विषाद योग" की समाप्ति,
भई इसी के साथ।
ज्ञान वैराग्य का मिला,
प्रभु को टेकूँ माथ॥

दूसरा अध्याय

'सांख्य योग'

चौ०- ''सांख्य योग'' ज्ञान बतलाये, आत्मा अविनाशी कथ पाये।

अर्जुन की उपर्युक्त युक्तियां सुन कर श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन को मधुर सी फटकार देते हुए प्रथम तो उसे कहा ''हे अर्जुन तू बातें तो पण्डितों सी करता है परन्तु जानते हो कि पण्डित (विद्वान) न किसी के मरने पर और न ही जीवित रहने पर दुख, शोक व हर्ष मनाते हैं।''

तत्पश्चात श्रीकृष्ण उसे अध्यात्म ज्ञान का उपदेश देते हुए उस के विषाद को दूर करने का यत्न करते हैं। भगवान ने कहा जो विद्वान जीवन को आत्म दृष्टि से देखते हैं उन के लिए मृत्यु कुछ महत्व नहीं रखती। शरीर मरता है, आत्मा नहीं। और आत्मा को इससे कोई फर्क नहीं पड़ता। उसे तो नया शरीर मिल जाता है। ऐसे ही जैसे कोई पुराने वस्त्र उतार कर नये पहन ले तो मनुष्य को क्या फर्क पड़ता है। और यदि समझो कि आत्मा की कुछ हानि होती है तो याद रखो:-

(1) प्रथम तो कोई भी प्राकृतिक शक्ति आत्मा का कुछ बिगाड़ नहीं सकती। कोई शस्त्र आत्मा को काट या मार नहीं सकता। अग्नि में शक्ति नहीं कि आत्मा को जला सके और न ही जल में शक्ति है कि आत्मा को गला सके। हवा में आत्मा को सुखाने की शक्ति नहीं। और यदि समझो कि काल का प्रभाव आत्मा पर होता हे तो यह भूल है। आत्मा काल से भी परे है, न कभी यह पैदा हुई और न कभी मरेगी। यह अजर अमर और शाश्वत है। आत्मा अव्यक्त है और

अचिन्त्य है और सर्वगत है। इसे कोई देखना चाहे, समझना चाहे तो वह आश्चर्य में ही डूब जाएगा। इस के विषय में सुनते हुए भी आश्चर्य होता है और समझाते हुए भी समझाया नहीं जा सकता।

(2) आत्मा सभी देहों में छिपी हुई है। इसे वहां पर कोई मार नहीं सकता। इसलिए शोक करना व्यर्थ है। और यदि शरीर के लिए भी कोई शोक करे तो वह भी ठीक नहीं। क्योंकि मरना और जन्मना प्रकृति का नियम है। इसे कोई भी टाल नहीं सकता।

इस प्रकार आत्मा सम्बन्धी उपदेश दे कृष्ण ने अर्जुन के विषाद को दूर करने का प्रयास किया। और फिर उसे उसके धर्म की बात बताई कि वह क्षत्री कुल में पैदा हुआ है। युद्ध करना उसका धर्म है। जो क्षत्री युद्ध से विमुख होता है, उस की निन्दा होती है। और क्षत्री के लिए निन्दा तो मौत से भी बदतर है। लोग उसे कायर और भागा हुआ कहते हैं।

इस के साथ यह भी बतलाया कि जो क्षत्री युद्ध में मारा जाता है उसे स्वर्ग मिलता है और यदि जीत जाए तो राज्य की प्राप्ति होती है। उसे दोनों ओर लाभ है। अतः हे अर्जुन! युद्ध से विमुख होना तुम्हारे लिए कदापि उचित नहीं। अपने संबन्धियों के लिए और अपने लिए शोक मत कर।

अर्जुन ने उपर्युक्त अपनी युक्तियों में पाप की बात भी कही थी। उस के प्रत्युत्तर में कृष्ण भगवान ने बतलाया कि पाप से छूटा कैसे जा सकता है। 'बुद्धि योग' द्वारा पाप से मुक्ति भी पाई जा सकती है। यह श्रवण कर पण्डित ने निज जिज्ञासा प्रकट की और कहा :-

पण्डित - गुरुवर जिस योग द्वारा मनुष्य पाप से बच सकता है वह योग मैं आप से जानना चाहता हूँ ।

प्रभु जी - पण्डित वर 'बुद्धि योग' का जो उपदेश श्री कृष्ण ने अर्जुन को दिया था वह मैं तुझे बतलाता हूँ। अपने धर्म का अनासक्त चित्त से पालन करना ही 'बुद्धि योग' है। जो बुद्धि योगी इस प्रकार अपने धर्म का पालन करता है वह पाप, पुण्यों के फल से मुक्त रहता है। बुद्धि योग का तात्पर्य यह है कि निज कर्म में ही बुद्धि स्थिर हो। इसीलिए 'बुद्धि योगी' को 'स्थित प्रज्ञ' भी गीता में लिखा गया है।

उस की अपने कर्म में ही बुद्धि स्थिर रहे और मन में कोई इच्छा न हो। वह अपना अधिकार कर्म करने तक ही सीमित रखे और फल से उस का कोई सरोकार न हो और किसी भी हालत में अपने कर्म को न त्यागे। सिद्धि और असिद्धि में वह समान रहे। इस कारण 'बुद्धि योग' को 'समत्व योग' भी गीता में लिखा है। ऐसा योगी इस कारण पुण्य अपुण्य से अछूता रहता है और उसे कर्म का फल भोगना नहीं पड़ता। कर्म के फल को न पा कर वह उस पद को प्राप्त करता है जिसे गीता में 'अनामयपद' की संज्ञा दी गई है। ऐसा योगी अचल समाधि में रहता है। श्री प्रभु जी की बात सुन पण्डित जी ने पूछा :-

पण्डित - योगिवर ! ऐसा योगी जो 'स्थित प्रज्ञ' हो उसके लक्षण क्या होते हैं, मैं आप से सुनना चाहता हूँ।

प्रभु जी - पण्डितवर, गीता में बतलाया है स्थित प्रज्ञ के विशेष विशेष लक्षण इस प्रकार से हैं :-

1. स्थित प्रज्ञ अपने मन की सब कामनाएं त्याग देता है और आत्म चिन्तन में रहता है।
2. यदि सुख की प्राप्ति हो तो वह निस्पृह रहता है और यदि दुख की प्राप्ति हो तो वह उद्विग्न नहीं होता।

3. उस में राग, द्वेष, क्रोध आदि देखने में नहीं आते।

4. शुभ, अशुभ उसके लिए समान होते हैं।

5. वह सर्वेन्द्रियों को इस प्रकार वश में रखता है जैसे कच्छुआ अपने अंगों को समेट लेता है।

6. स्थित प्रज्ञ को प्रभु का साक्षात्कार होता है और विषयों से उसका लेश मात्र भी प्यार नहीं होता।

7. स्थित प्रज्ञ योगी यह जानता है कि विषय संग से काम की उत्पत्ति होती है। काम से क्रोध पैदा होता है और क्रोध संमोह को जन्म देता है। तथा संमोह से स्मृति भ्रमित हो जाती है। स्मृति के भ्रांत होने पर बुद्धि का नाश हो जाता है और बुद्धि नाश सर्वनाश का कारण बनती है। श्री प्रभु जी की बात सुन पण्डित बोला :-

पण्डित - योगिवर, यह बात तो ठीक है, परन्तु हर मनुष्य के साथ इन्द्रियां लगी हैं, और इन्द्रियों के साथ विषय भी हैं। विषयों का परित्याग कैसे हो सकता है।

प्रभु जी - पण्डितवर, यह ठीक है कि प्रत्येक व्यक्ति को भगवान ने इन्द्रियां दी हैं और इन्द्रियों के साथ विषय भी। विषयों से छूटना सुगम नहीं। परन्तु योगी के जीवन और सामान्य मनुष्य के जीवन में अन्तर होता है।

भगवान कृष्ण के गीता में शब्द हैं :-

''योगी का जो दिन है, सामान्य की वह रात।
सामान्य का जो दिन है, योगी की वह रात''।

ऐसा होने पर योगी विषयों से बचकर रहता है। गीता में एक और भी बात बतलाई है कि 'स्थितप्रज्ञ' का हृदय सामान्य मनुष्य के हृदय से भिन्न होता है। वह गहरे समुद्र के समान होता है। जैसे समुद्र में नदियां गिरती रहती हैं और समुद्र अपनी सीमा में रहता है, ऐसे ही योगी में वही गुण होता है और वह सदा शांत रहता है। विषयों का उस के चित्त पर प्रभाव नहीं होता।

हे पण्डितवर! इस स्थिति को गीता में 'ब्राह्मी स्थिति' की संज्ञा दी है। इस अवस्था में जन देह त्याग कर ब्रह्म लोक में जाता है। पण्डितवर, 'बुद्धि योग' को गीता में 'कर्म योग' की संज्ञा भी दी गई है। इस योग का पुनः विस्तार गीता के अगले अध्याय में मिलेगा।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'सांख्य योग' नाम - दूसरा अध्याय

दोहा

"सांख्य योग अध्याय की,
भयी इति श्री नाथ।
ज्ञान आत्मा का मिला,
प्रभु को टेकूं माथ॥

तीसरा अध्याय

'कर्म योग'

चौ०- कर्म बिना न क्षण रह पायें, कर्म से पीछा क्यों छुड़ायें।

गत अध्याय में भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को 'बुद्धियोग' का उपदेश दिया जिस द्वारा मनुष्य को 'ब्राह्मी स्थिति' अर्थात् मोक्ष की उपलब्धि होती है। बुद्धियोग भी दो विचार धाराओं में बंटा है। एक का नाम है 'सांख्य योग' और दूसरे का 'कर्म योग'। सांख्य योग में ज्ञान को प्रधानता दी जाती है और कर्म योग में कर्म को। सांख्य योग को 'सन्यास योग' भी कहते हैं। सांख्य योग कर्मों का त्याग और ज्ञान की साधना बतलाता है।

प्रस्तुत 'कर्म योग' के अध्याय में इन दोनों मार्गों पर विचार किया गया है और अन्त में भगवान कृष्ण जिस मार्ग को श्रेयस्कर मानते हैं उसका निर्णय देते हैं।

गत अध्याय में अर्जुन को यही भ्रांति हो गई थी कि भगवान श्री कृष्ण उसे कभी 'सन्यास' और कभी 'कर्म' का उपदेश दे कर 'बुद्धि योग' का महत्व बतला रहे हैं। इसलिए उसने प्रश्न किया था -

अर्जुन - ''हे जनार्दन! यदि आप को कर्म की अपेक्षा ज्ञान श्रेष्ठ मान्य है तो फिर हे केशव! मुझे कर्म में क्यों लगाते हैं।''

यही बात श्री प्रभु जी से पण्डित ने भी जाननी चाही तो श्री प्रभु जी ने कहा - ''पण्डितवर! भगवान कृष्ण के आगे कहे उपदेशों को श्रवण कर के तेरे चित्त में कोई भ्रांति नहीं रह पायेगी।''

भगवान श्री कृष्ण ने अर्जुन को इस प्रकार कहा था -

श्री कृष्ण - हे निष्पाप, इस लोक में दो प्रकार की 'निष्ठा' मेरे द्वारा पहले कही गई हैं। उनमें से सांख्ययोगियों की निष्ठा तो ज्ञानयोग से और कर्म योगियों की निष्ठा कर्म योग से होती है। परन्तु कर्म का त्याग तो किसी भी निष्ठा में त्याज्य नहीं। कर्म तो करना ही पड़ता है। कोई भी मनुष्य किसी भी काल में क्षणमात्र भी बिना कर्म किए नहीं रहता क्योंकि सारा मनुष्य मात्र समुदाय प्रकृति जनित गुणों द्वारा परवश हुआ कर्म करने के लिए बाध्य होता है।

जो मूढ़बुद्धि मनुष्य समस्त इन्द्रियों को हठपूर्वक ऊपर से रोक कर परन्तु मन से उन इन्द्रियों के विषयों का चिन्तन करता रहता है, वह मिथ्याचारी अर्थात् दम्भी कहा जाता है।

जो पुरुष मन से इन्द्रियों को वश में कर के अनासक्त हुआ समस्त इन्द्रियों द्वारा कर्म योग का आचरण करता है, वही श्रेष्ठ है।

इसलिए मनुष्य को चाहिए कि शास्त्र विहित कर्तव्य कर्म करता रहे, क्योंकि कर्म न करने की अपेक्षा कर्म करना श्रेष्ठ है तथा कर्म न करने से शरीर निर्वाह भी नहीं होता।

पण्डित - गुरुवर, कर्मयोग के विषय में जो कुछ सुना उस से बिल्कुल स्पष्ट है कि श्रीमद्भगवद्गीता के अनुसार 'कर्मयोग' क्या है। आप के पास आकर मुझे

कोई इस विषय में भ्रांति नहीं रही। अब कृपा कर बतलाइये 'सांख्य योग' या 'सन्यास योग' क्या है।

प्रभु जी - गीता के अनुसार जो मनुष्य आत्मा में ही रमन करने वाला और आत्मा में ही तृप्त तथा आत्मा में ही सन्तुष्ट हो उसके लिए कोई कर्तव्य नहीं है। सांख्य योग की यह निष्ठा है।

उस महापुरुष का इस विश्व में न तो कर्म करने से कोई प्रयोजन रहता है और न कर्मों के न करने से ही कोई प्रयोजन रहता है। तथा सम्पूर्ण प्राणियों में भी इस का किञ्चिन्मात्र भी स्वार्थ का सम्बन्ध नहीं रहता। इस प्रकार अनासक्त रह कर सांख्य योगी कर्म करता हुआ भी परमात्मा को प्राप्त हो जाता है।

इस प्रकार सांख्य योग को स्पष्ट शब्दों में बतला कर गीता में 'कर्म योग' के इस अध्याय में कर्म योग के बारे में जो और लिखा है, वह इस प्रकार से है:-

श्री कृष्ण भगवान बतलाते हैं कि जनकादि पुरातन पुरुषों ने कर्म योग द्वारा ही सिद्धि प्राप्त की थी। कर्म योगी 'लोक संग्रह' हित ही सब कर्म करता है। और अन्य लोग उससे शिक्षा लेते हैं। अपने विषय में भगवान कहते हैं कि मुझे इन तीन लोकों में न कुछ कर्तव्य है और न कोई भी प्राप्त करने योग्य वस्तु अप्राप्त है। फिर भी मैं कर्म में ही प्रवृत्त रहता हूँ। यदि कदाचित् मैं सावधान होकर कर्मों में न वरतूं तो बड़ी हानि हो जाये, क्योंकि मनुष्य सब प्रकार से मेरे ही मार्ग का अनुसरण करते हैं। यदि मैं कर्म न करूं तो ये सब मनुष्य नष्ट-भ्रष्ट हो जाएं और मैं सङ्करता का करने वाला होंऊ तथा इस समस्त प्रजा को नष्ट करने वाला बनूँ।

भगवान की शिक्षा है कि अज्ञानी जन जिस प्रकार कर्म करते हैं आसक्ति रहित विद्वान भी, लोक संग्रह करना चाहता हुआ, उसी प्रकार कर्म करे। परमात्मा के स्वरूप में अटल स्थित हुए ज्ञानी पुरुष को चाहिए कि वह अज्ञानियों की बुद्धि में भ्रम अर्थात् कर्मों में अश्रद्धा उत्पन्न न करे। किंतु स्वयं शास्त्रविहित समस्त कर्म भली भांति करता हुआ उन से भी वैसे ही कर्म करवावे।

अज्ञानी मनुष्य अहंकार से मोहित हुआ ''मैं करता हूँ'' ऐसा मानता है। वास्तव में सम्पूर्ण कर्म सब प्रकार से प्रकृति के गुणों द्वारा ही किये जाते हैं, परन्तु तत्व को जानने वाला ज्ञानी योगी सम्पूर्ण गुण ही गुणों में बरत रहे हैं, ऐसा समझ कर उन में आसक्त नहीं होता। पूर्णतया समझने वाला ज्ञानी न समझने वाले मन्दबुद्धि अज्ञानियों को विचलित न करे।

भगवान कृष्ण कर्म योग की शिक्षा दे कर अर्जुन को यही आदेश देते हैं कि मुझ अन्तर्यामी परमात्मा में लगे हुए चित्त द्वारा सम्पूर्ण कर्मों को मुझ में अर्पण करके आशा रहित और सन्ताप रहित हो कर युद्ध कर।

जो कोई मनुष्य दोष दृष्टि से रहित और श्रद्धायुक्त होकर मेरे इस कर्मयोग के मत का सदा अनुसरण करते हैं, वे सम्पूर्ण कर्मों से छूट जाते हैं तथा इन्द्रिय के अर्थों में राग और द्वेष छिपे हुए स्थित होते हैं। मनुष्य को उन दोनों के वश में नहीं होना चाहिए क्योंकि वे दोनों ही इसके कल्याण मार्ग में विघ्न करने वाले होते हैं।

श्री प्रभु जी महाराज से भगवान कृष्ण के उपदेशों को श्रवण कर प्रसन्नता पूर्वक पण्डित ने कहा - ''गुरुवर, कर्म योग के इस अध्याय में 'बुद्धि योग' और 'सन्यास योग' के दो मार्ग बतलाये गये हैं और 'ज्ञान' द्वारा दोनों की एकता दर्शायी है। मैं इसे पूर्णतया समझ गया हूँ। मेरे विचार में मनुष्य जीवन को सार्थक करने के लिए यही श्रेष्ठ शिक्षा है।''

प्रभु जी - अगले अध्याय में इसी विषय पर 'ज्ञान-कर्म-सन्यास योग' का अध्ययन पुनः करेंगे।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'कर्म -योग' नाम - तीसरा अध्याय

दोहा

" कर्मयोग' वा "कर्म" में,
है भेद जो नाथ।
पाकर उस का ज्ञान अब,
" सेवक" भया सनाथ ॥

चौथा अध्याय

'ज्ञान कर्म सन्यास योग'

दो०- ज्ञान पूर्वक कर्म करे, दे संकल्प त्याग।
योगी उसको जानिये, 'सन्यासी' महाभाग॥

इस अध्याय में भगवान श्री कृष्ण कर्म योग के महत्व को समझाते हुए अर्जुन को कहते हैं कि अर्जुन जो ज्ञान मैंने तुझे दिया है, वह ज्ञान अति पुरातन है और राजर्षियों के वंशों में चलता आ रहा है। सर्वप्रथम मैंने यह ज्ञान महाराज सूर्य (विवस्वान) को (जिन से सूर्यवंश चला और जिस वंश में आगे चल कर श्री राम चन्द्र का अवतार हुआ) दिया था। महाराज सूर्य ने वह ज्ञान मनु को दिया। मनु ने महाराज इक्ष्वाकु को वही ज्ञान दिया और दीर्घकाल तक यह ज्ञान परंपरा से राजर्षियों को मिलता रहा। फिर यह ज्ञान नष्ट हो गया और इसे सभी भूल गये। भगवान अर्जुन को कहते हैं कि अब वही ज्ञान मैं तुझे दे रहा हूँ। ज्ञान सहित जो कर्म कर पायें और फल की इच्छा न मन लायें उस योग की कहीं भी समता नहीं है। इस ज्ञान द्वारा गृहस्थ में रह कर मोक्ष प्राप्त किया जा सकता है।

भगवान कृष्ण के वचन श्रवण कर अर्जुन ने पूछा, ''हे मित्र, तुम्हारा तो अब जन्म हुआ है। महाराज सूर्य को तुमने, लाखों वर्ष पूर्व, कैसे यह ज्ञान दिया। मेरी समझ में यह बात नहीं आ रही।'' भगवान कृष्ण ने उत्तर दिया ''हे अर्जुन, मेरे और तेरे बहुत जन्म हो चुके हैं। उन सब को तू नहीं जानता। मैं जानता हूँ। मैं अविनाशी स्वरूप, अजन्मा होने पर भी तथा सब प्राणियों का ईश्वर होने पर

भी, अपनी प्रकृति को अधीन करके, योग माया से प्रकट होता हूँ। जब जब धर्म की हानि और अधर्म की वृद्धि होती है तब तब मैं अपने रूप को रचता हूँ। साधु पुरुषों का उद्धार करने के लिए और दूषित कर्म करने वालों का नाश करने के लिए तथा धर्म स्थापन करने के लिए युग युग में मैं प्रकट होता हूँ। हे अर्जुन मेरा वह जन्म और कर्म दिव्य अर्थात् अलौकिक है। इस प्रकार जो पुरुष मुझे तत्त्व से जानता है वह शरीर को त्याग कर फिर जन्म को नहीं प्राप्त होता है। राग, भय और क्रोध से रहित अनन्य भाव से मेरे में स्थिति वाले मेरे शरण हुए बहुत से पुरुष ज्ञान रूप तप से पवित्र हुए मेरे स्वरूप को प्राप्त हो चुके हैं। हे अर्जुन जो मेरे को जैसे भजते हैं मैं भी उनको वैसे ही भजता हूँ। इस रहस्य को जानकर ही बुद्धिमान मनुष्यगण सब प्रकार से मेरे इस मार्ग के अनुसार चलते हैं। कर्मों के फल में मेरी स्पृहा नहीं है। इसलिए मेरे को कर्म लिपायमान नहीं करते। इस प्रकार जो मेरे को तत्त्व से जानता है वह भी कर्मों से नहीं बंधता है। पहले होने वाले मुमुक्षु पुरुषों द्वारा भी इस प्रकार ही कर्म किया गया है। इससे हे अर्जुन, तू भी पूर्वजों द्वारा सदा से किये हुए कर्म को ही कर।''

इस प्रकार भगवान कृष्ण अर्जुन को अपने जन्म और अपने कर्म के विषय में बतला कर कर्म योग की शिक्षा देते हुए आगे कहते हैं कि अर्जुन कर्म की फिलासोफी बहुत गहन है। उस में सावधान हो कर ही मनुष्य कर्म योग के मार्ग पर ठीक चल सकता है। क्योंकि कर्म क्या है और अकर्म क्या है इस विषय में बुद्धिमान पुरुष भी मोहित हो जाते हैं। इस लिए मैं कर्मों का तत्त्व तेरे लिए अच्छी प्रकार कहूँगा जिस को जान कर तू अशुभ अर्थात् सांसारिक बन्धन से छूट जायेगा। ऐसा बतला भगवान 'कर्म योग' का रहस्यमय उपदेश देते हुए कर्म योगी के विषय में बतलाते हैं :-

जिस के सम्पूर्ण कार्य कामना और संकल्प से रहित हैं उस ज्ञान रूप अग्नि द्वारा भस्म हुए कर्मों वाले पुरुष को ज्ञानी जन भी 'पण्डित' कहते हैं। जो पुरुष सांसारिक आश्रय से रहित सदा परमानन्द परमात्मा में तृप्त है वह कर्मों के फल और संग अर्थात् कर्तव्य अभिमान को त्याग कर कर्म में अच्छी प्रकार बर्तता हुआ भी कुछ भी नहीं करता है। जीत लिया है अन्तः करण और शरीर जिस ने तथा त्याग दी हैं संपूर्ण भोगों की सामग्री जिसने ऐसा आशा रहित पुरुष शरीर सम्बन्धी कर्म को करता हुआ भी पाप को नहीं प्राप्त होता।

अपने आप जो कुछ प्राप्त हो उस में ही सन्तुष्ट रहने वाला और हर्ष, शोक आदि द्वंद्वों से अतीत हुआ तथा ईर्ष्या से रहित, सिद्धि और असिद्धि में समत्व भाव वाला, पुरुष कर्मों को करके भी उनमें नहीं बंधता है। आसक्ति से रहित ज्ञान में स्थित हुए चित्त वाले मुक्त पुरुष के सम्पूर्ण कर्म नष्ट हो जाते हैं।

भगवान कृष्ण ने 'कर्म योग' को 'ज्ञान यज्ञ' की संज्ञा दी है और बतलाया कि 'द्रव्य यज्ञ' की अपेक्षा 'ज्ञान यज्ञ' श्रेष्ठ है। और कहा,''हे अर्जुन सांसारिक वस्तुओं से सिद्ध होने वाले यज्ञ से ज्ञान रूप यज्ञ सब प्रकार से श्रेष्ठ है क्योंकि सम्पूर्ण यावन्मात्र कर्म ज्ञान में सम्पूर्ण होते हैं अर्थात् ज्ञान उन की पराकाष्ठा है।''

''हे अर्जुन, जैसे प्रज्वलित अग्नि ईन्धन को भस्ममय कर देती है वैसे ही ज्ञान रूपी अग्नि सम्पूर्ण कर्मों को भस्ममय कर देती है। जितेन्द्रिय, तत्पर हुआ श्रद्धावान, पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है। ज्ञान को प्राप्त हो कर तत्क्षण भगवत् प्राप्तिरूप शान्ति को प्राप्त हो जाता है। 'भगवत्विषय' को न जानने वाला तथा श्रद्धा रहित और संशय युक्त पुरुष परमार्थ से भ्रष्ट हो जाता है। संशय युक्त पुरुष

के लिए न तो सुख है और न यह लोक है, न ही परलोक है। अर्थात् यह लोक और परलोक दोनों ही उस के लिए भ्रष्ट हो जाते हैं।''

''हे अर्जुन! समत्व बुद्धिरूप योग द्वारा भगवत् अर्पण कर दिये हैं सम्पूर्ण कर्म जिस ने और ज्ञान द्वारा नष्ट हो गए हैं सब संशय जिसके ऐसे परमात्म परायण पुरुष को कर्म नहीं बांधते हैं।''

अंत में भगवान कृष्ण अर्जुन को यही उपदेश देते हैं कि, ''हे अर्जुन तू समत्व बुद्धिरूप योग में स्थित हो और अज्ञान से उत्पन्न हुए हृदय में स्थित इस अपने संशय को ज्ञान रूपी तलवार द्वारा छेदन करके युद्ध के लिए खड़ा हो।''

श्री प्रभु जी के मुखारविन्द से गीता का यह उपदेश श्रवण कर पण्डित हर्षित हो कर बोला - ''हे योगिवर, जिस प्रकार आपने 'ज्ञान-कर्म-सन्यास योग' को स्पष्ट कर बतलाया और ज्ञान कर्म तथा सन्यास का समन्वय सरल रूप से किया, वह बहुत अच्छा लगा। परन्तु कर्म और सन्यास जो दोनों भिन्न-भिन्न लगते हैं उन का स्पष्टीकरण मैं आप से और अधिक चाहता हूँ जिस से मेरे मन में लेशमात्र भी भ्रान्ति न रहने पाये।''

श्री प्रभु जी ने कहा - हे विप्रवर, जो आपने पूछा है वह ही वर्णन अगले पाठ में है। हम उसे पढेंगे।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'ज्ञान-कर्म-सन्सास योग'

नाम - चौथा अध्याय

दोहा

ज्ञान कर्म सन्यास का, यह अध्याय समाप्त।
अति गूढ़ यह ज्ञान है, यहां भया जो प्राप्त ॥

पांचवा अध्याय

'कर्म-सन्यास योग'

दो०- योगी करता कर्म है, सब इन्द्रियों से मीत।
'संग' को वह त्याग कर, 'कर्म-सन्यास' लो चीत॥

गत पाठ में श्री प्रभु जी से पण्डित ने जो पूछा था इस पाठ के आरंभ में अर्जुन भी श्री कृष्ण भगवान से वही प्रश्न करता है।

''हे कृष्ण, आप कर्मों के सन्यास की और फिर निष्काम कर्म योग की प्रशंसा करते हो। इन दोनों में एक जो निश्चय किया हुआ कल्यान कारक मार्ग होवे उस को मेरे लिए कहिए।'' श्री भगवान कृष्ण ने उत्तर दिया - ''हे अर्जुन, 'सन्यास' और 'निष्काम कर्मयोग' को मूर्ख लोग अलग अलग फल वाले कहते हैं न कि पण्डितजन, क्योंकि दोनों में से एक में भी अच्छी प्रकार स्थित हुआ पुरुष दोनों के फलरूप परमात्मा को प्राप्त होता है।

ज्ञानयोगियों द्वारा जो परम धाम प्राप्त किया जाता है निष्काम कर्मयोगियों द्वारा भी वही प्राप्त किया जाता है, इसलिए जो पुरुष 'ज्ञान योग' और 'निष्काम कर्मयोग' को फलरूप से एक देखता है वह ही यथार्थ देखता है''।

इससे आगे भगवान 'कर्मयोग' और 'सन्यास योग' का स्पष्टीकरण स्वयं करते हैं :-

कर्म योग 'निष्काम कर्म योग' के बिना 'सन्यास' (अर्थात् मन इन्द्रियों और शरीर द्वारा होने वाले सम्पूर्ण कर्मों में कर्तापन का त्याग होना) कठिन है और भगवत् स्वरूप को मनन करने वाला निष्काम 'कर्मयोगी' परब्रह्म परमात्मा को शीघ्र ही प्राप्त हो जाता है। तथा वश में किया हुआ है शरीर जिसने, ऐसा जितेन्द्रिय और विशुद्ध अन्तः करण वाला एवं सम्पूर्ण प्राणियों के आत्मरूप परमात्मा में एकीभाव हुआ निष्काम 'कर्मयोगी' कर्म करता हुआ भी लिपायमान नहीं होता।

हे अर्जुन, तत्त्व को जानने वाला 'सांख्य योगी' तो देखता हुआ, भोजन करता हुआ, गमन करता हुआ, सोता हुआ, श्वास लेता हुआ, बोलता हुआ, त्यागता हुआ, ग्रहण करता हुआ तथा आंखों को खोलता (और) मींचता हुआ भी सब इन्द्रियां अपने - अपने अर्थों में वर्त रही हैं इस प्रकार समझता हुआ माने कि मैं कुछ भी नहीं करता हूँ। परन्तु देहाभिमानियों द्वारा यह साधन होना कठिन है और निष्काम 'कर्म योग' सुगम है, जो पुरुष सब कर्मों को परमात्मा में अर्पण करके और आसक्ति को त्याग कर कर्म करता है, वह पुरुष जल में कमल पत्ते के सदृश पाप से लिपायमान नहीं होता।

निष्काम 'कर्म योगी' केवल (इन्द्रिय, मन, बुद्धि और शरीर द्वारा भी आसक्ति को त्याग कर) अन्तःकरण की शुद्धि के लिए कर्म करते हैं। इसी से निष्काम कर्मयोगी कर्मों के फल को परमेश्वर के अर्पण करके भगवत् प्राप्तिरूप शांति को प्राप्त होता है। इसलिए निष्काम कर्मयोग उत्तम है।''

श्री प्रभु जी के मुखारविन्द से श्रवण कर पण्डित ने नम्रता पूर्वक कहा, ''हे योगिवर! निष्काम कर्म योग के विषय में भगवान कृष्ण का ज्ञान जो आपने कृपा कर दिया, वह भली प्रकार से जान लिया। अब 'सांख्य योग' (सन्यास योग) में जिन की निष्ठा है उन के विषय में भी मैं जानना चाहता हूँ।''

सन्यास योग श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया - ''हे विप्रवर, गीता में उपर्युक्त बातों के पश्चात जो लिखा है वह सांख्य योग की ही व्याख्या है। ध्यान से श्रवण करें।'' भगवान कहते हैं - हे अर्जुन, वश में है अन्तः करण जिस के, ऐसा सांख्य योग का आचरण करने वाला पुरुष तो निःसन्देह न करता हुआ और न करवाता हुआ नव द्वारों वाले शरीर रूप घर में सब कर्मों को मन से त्याग कर आनन्द पूर्वक सच्चिदानन्दघन परमात्मा के स्वरूप में स्थिर रहता है और मनन करता है कि परमेश्वर भी भूत प्राणियों के न कर्तापन को और न कर्मों को तथा न कर्मों के फल के संयोग को वास्तव में रचता है। किन्तु परमात्मा के सकाश (समीपता) से प्रकृति ही बर्तती है। अर्थात् गुण ही गुणों में बर्त रहे हैं। और मनन करता है कि सर्वव्यापी परमात्मा न किसी के पाप कर्म को और न किसी के शुभ कर्म को भी ग्रहण करता है किन्तु माया के द्वारा ज्ञान ढका हुआ है, इस से सब जीव मोहित हो रहे हैं।

जिनका वह अन्तःकरण का अज्ञान आत्मज्ञान द्वारा नष्ट हो गया है उन का वह ज्ञान सूर्य के सदृश उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा का साक्षात कराता है। और हे अर्जुन, तद्रूप है बुद्धि जिन की तथा तद्रूप (ईश्वर रूप) है मन जिन का

और उस सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही निरन्तर एकीभाव से स्थिति जिन की, ऐसे तत्परायण (ईश्वर परायण) पुरुष ज्ञान के द्वारा पाप रहित हुए अपुनरावृत्ति को अर्थात् परमगति को प्राप्त होते हैं। ऐसे वे ज्ञानी जन विद्या और विनययुक्त ब्राह्मण में और गौ तथा हाथी वा कुत्ते और चण्डाल में भी समभाव से देखने वाले होते हैं।

जिन का मन समत्व भाव में स्थित है उन के द्वारा (इस जीवित अवस्था में ही) संपूर्ण संसार जीत लिया गया है। सच्चिदानन्दघन परमात्मा निर्दोष और सम है। इस से वे सच्चिदानन्दघन परमात्मा में ही स्थित हैं।

बाहर के विषयों में (अर्थात् सांसारिक भोगों में) आसक्ति रहित अन्तः करण वाला पुरुष अन्तः करण में जो भगवत् ध्यान जनित आनन्द है उसको प्राप्त होता है; और वह पुरुष सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मरूप योग में एकी भाव से स्थित हुआ अक्षय आनन्द को अनुभव करता है।

यह जो इन्द्रिय तथा विषयों के संयोग से उत्पन्न होने वाले सब भोग हैं वे यद्यपि विषयी पुरुषों को सुख रूप भासते हैं तो भी निःसन्देह दुख के ही हेतु हैं और आदि अन्त वाले अर्थात् अनित्य हैं। इसलिए हे अर्जुन, बुद्धिमान विवेकी पुरुष उन में नहीं रमता।

उपसंहार श्री प्रभु जी ने गीता के अनुसार 'कर्म योग' और 'सांख्य योग' का विवेचन इस प्रकार पण्डित को बतलाया और दोनों की एक ही गति दर्शा कर पण्डित से कहा कि योगी पुरुष का स्वभाव जो गीता में लिखा है वह मै तुझें बतलाता हूँ।

जो पुरुष शरीर के नाश होने से पूर्व ही काम और क्रोध से उत्पन्न हुए वेग को सहन करने में समर्थ है अर्थात् काम, क्रोध को जिसने सदा के लिए जीत लिया है वह मनुष्य इस लोक में योगी है और वही सुखी है।

जो पुरुष अन्तर आत्मा में सुख वाला है तथा जो आत्मा में ही ज्ञान वाला है ऐसा वह सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा के साथ एकीभाव हुआ योगी ब्रह्म को प्राप्त होता है।

नाश हो गये हैं सब पाप जिन के तथा ज्ञान करके निवृत्त हो गया है संशय जिनका और संपूर्ण भूत प्राणियों के हित में है रति जिन की, एकाग्र हुआ है भगवान के ध्यान में मन जिनका ऐसे ब्रह्मवेत्ता पुरुष शांत ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

काम, क्रोध से रहित, जीते हुए चित्त वाले, परब्रह्म परमात्मा का साक्षात्कार किये हुए, ज्ञानी पुरुषों के लिए सब ओर से शान्त परब्रह्म परमात्मा प्राप्त है।

जो योगी बाहर के विषयों वा भोगों का न चिन्तन करता हुआ, नेत्रों की दृष्टि को भृकुटी के बीच में स्थित करके, तथा नासिकाग्र में विचरने वाले प्राण और अपान वायु को सम करके, तथा भय और क्रोध से रहित रहता हो वह सदा ही मुक्त है।

कर्म और सन्यास के संयुक्त साधन के इस उपदेश के उपरान्त श्री कृष्ण भगवान कहते हैं कि ''मेरे को यज्ञ और तपों का भोगने वाला और संपूर्ण लोकों के ईश्वरों का भी ईश्वर तथा संपूर्ण भूत प्राणियों का सुहृद (अर्थात् स्वार्थ रहित प्रेमी) ऐसा तत्त्व से जानकर योगी शांति को प्राप्त होता है।''

श्री प्रभु जी से कर्म और सन्यास का विषद वर्णन इस प्रकार श्रवण कर पण्डित प्रसन्न हुआ और कहने लगा - ''हे योगिवर आप की इस सुन्दर व्याख्या द्वारा मेरे कई संशयों की निवृत्ति हुई है। परन्तु 'अनासक्त कर्म' और 'सन्यास' दोनों की साधना सामान्य पुरुष के लिए कैसे संभव हो सकती है। आप से मैं वह योग सुनना चाहता हूँ जिस द्वारा पुरुष अनासक्त रह कर्म कर सके, और उस के लिए सन्यास योग भी संभव हो सके।'' पण्डित की जिज्ञासा श्रवण कर श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया कि जब हम अगला अध्याय गीता का पढ़ेंगे तो वहां पर ग्यारह संयमों का वर्णन है जिन्हें साध कर जिज्ञासु पुरुष योग के इस मार्ग पर चल सफलता प्राप्त कर सकता है।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'कर्म सन्यास योग' नाम - पांचवा अध्याय

दोहा

कर्म किमि सन्यास संग,
लो समझ यह बात।
आत्मा कर्म न करत है,
करत देह ही तात॥

छटा अध्याय

'आत्म संयम योग'

दो०- वश करे सभी इन्द्रियां, करे एकाग्र चित्त।
आत्म संयमी जानिये, योगी उत्तम मित्त॥

आत्म संयम के इस अध्याय में भगवान श्री कृष्ण पुनः कर्मयोग और सन्यास योग को स्पष्ट करते हैं और क्रमशः वे ([1] ग्यारह) संयम भी बतलाते हैं जिन द्वारा पुरुष 'कर्म योगी' और 'कर्म सन्यासी' हो सके।

1. कर्म फल त्याग संयम

श्री भगवान कहते हैं कि जो पुरुष कर्म के फल को न चाहता हुआ करने योग्य कर्म करता है वह सन्यासी और योगी है और केवल अग्नि को त्यागने वाला सन्यासी योगी नहीं है तथा केवल क्रियाओं को त्यागने वाला भी सन्यासी योगी नहीं है।

हे अर्जुन! जिस को सन्यास ऐसा कहते हैं उसी को तू योग जान। क्योंकि संकल्पों को न त्यागने वाला कोई भी पुरुष योगी नहीं होता।

---

1. ग्यारह संयम :-
   1. कर्म फल त्याग
   2. सन्यस्त संकल्प
   3. आत्म उद्धार
   4. विजितेन्द्रिय
   5. योग ध्यान
   6. नियताहार
   7. आत्म चिन्तन
   8. मुक्त काम
   9. समदर्शिता
   10. अभ्यास वैराग्य
   11. कल्याण कर्म

2. सन्यस्त संकल्प (योगरूढ़)

'समत्व बुद्धि रूप' योग में आरूढ़ होने की इच्छा वाले मनन शील पुरुष के लिए योग की प्राप्ति के लिए निष्काम भाव से कर्म करना ही हेतु कहा गया है और 'योगारूढ़' हो जाने पर उस योगारूढ़ पुरुष के लिए 'सर्वसंकल्पों ' का अभाव ही कल्याण में हेतु है।

जिस काल में न तो इन्द्रियों के भोगों में आसक्त होता है तथा न कर्मों में ही आसक्त होता है उस काल में सर्व सकल्पों का त्यागी पुरुष 'योगारूढ़' कहा जाता है।

3. आत्म उद्धार संयम

अपने द्वारा आप को संसार समुद्र से उद्धार करे और अपनी आत्मा को अधोगति में न पहुँचावे। क्योंकि यह जीव आप ही तो अपना मित्र है और आप ही अपना शत्रु है। वह आप अपना मित्र है जिसने मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है। और जिस ने मन और इन्द्रियों सहित शरीर नहीं जीता है वह आप ही अपना शत्रु है।

4. विजितेन्द्रिय संयम

हे अर्जुन! सर्दी गर्मी और सुख दुख आदि में तथा मान और अपमान में जिस के अन्तकरण की वृत्तियां अच्छी प्रकार शांत हैं अर्थात् विकार रहित हैं ऐसे स्वाधीन आत्मा वाले पुरुष के ज्ञान में सच्चिदानन्दघन परमात्मा सम्यक प्रकार से स्थित है। अर्थात् उस के ज्ञान में परमात्मा के सिवाय अन्य कुछ है ही नहीं।

ज्ञान-विज्ञान से तृप्त है अन्तः करण जिसका तथा विकार रहित है स्थिति जिस की और अच्छी प्रकार जीती हुई हैं इन्द्रियां जिस की तथा समान है मिट्टी पत्थर और सुवर्ण जिस को वह योगी युक्त अर्थात् भगवान की प्राप्ति वाला है ऐसा कहा जाता है।

सुहृद, मित्र, वैरी, उदासीन (पक्षपात रहित), मध्यस्थ (दोनों ओर की भलाई चाहने वाला), द्वेषी और बन्धुगण में तथा धर्मात्माओं में और पापियों में भी जो समान भाव वाला है वह अति श्रेष्ठ है।

5. योग ध्यान संयम

हे अर्जुन, जिस का मन और इन्द्रियों सहित शरीर जीता हुआ है ऐसा वासना रहित और संग्रह रहित योगी अकेला ही एकान्त स्थान में स्थित हुआ निरन्तर आत्मा को परमेश्वर के ध्यान में लगावे, शुद्ध भूमि में कुशा मृगछाला और वस्त्र हैं उपरोपरि जिसके ऐसे अपने आसन को न अति ऊँचा और न अति नीचा स्थिर स्थान पर कर के और उस आसन पर बैठ कर तथा मन को एकाग्र करके चित्त और इन्द्रियों की क्रियाओं को वश में कर अन्तः करण की शुद्धि के लिए योग का अभ्यास करे। उस की विधि इस प्रकार है कि काया, शिर और ग्रीवा को समान और अचल धारण किये हुए दृढ़ हो कर अपने नासिका के अग्र भाग को देखकर अन्य दिशाओं को न देखता हुआ और ब्रह्मचर्य के व्रत में स्थित रहता हुआ भय रहित तथा अच्छी प्रकार शांत अन्तः करण वाला और सावधान होकर मन को वश में करके मेरे में लगे हुए चित्त वाला और मेरे परायण हुआ स्थित होवे।

इस प्रकार आत्मा को निरन्तर परमेश्वर के स्वरूप में लगाता हुआ सावधान मन वाला योगी मेरे में स्थिति रूप परमानन्द पराकाष्ठा वाली शांति को प्राप्त करता है।

6 नियताहार संयम

हे अर्जुन, यह योग न तो बहुत खाने वाले का सिद्ध होता है और न बिल्कुल न खाने वाले का तथा न अति शयन करने के स्वभाव वाले का और न अत्यन्त जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

यह दुखों का नाश करने वाला योग तो यथायोग्य आहार और विहार करने वाले का तथा कर्मों में यथायोग्य चेष्टा करने वाले का और यथा योग्य शयन करने तथा जागने वाले का ही सिद्ध होता है।

7. आत्म चिन्तन संयम

जिस प्रकार वायु रहित स्थान में स्थित दीपक की ज्योति नहीं चलायमान होती है वैसी ही उपमा 'आत्मा' के ध्यान में लगे हुए योगी के जीते हुए चित्त की कही गयी है।

जिस अवस्था में योग के अभ्यास से निरुद्ध हुआ चित्त उपराम हो जाता है और जिस अवस्था में आत्मध्यान से शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा आत्मा को साक्षात करता हुआ आत्मा में ही सन्तुष्ट होता है, इन्द्रियों से अतीत केवल शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि द्वारा ग्रहण करने योग्य जो अनन्त आनन्द है उसको जिस अवस्था में अनुभव करता है और जिस अवस्था में स्थित हुआ यह योगी आत्म तत्व से नहीं

चलायमान होता है, जिस लाभ को प्राप्त कर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ योगी नहीं मानता है और जिस अवस्था में स्थित हुआ योगी बड़े भारी दुख से भी चलायमान नहीं होता है, और जो दुखरूप संसार के संयोग से रहित है तथा जिस का नाम 'आत्म चिन्तन संयम' योग है उसको जानना चाहिए। वह योग न उकताये हुए चित्त से अर्थात् तत्पर हुए चित्त से निश्चय पूर्वक करना कर्तव्य है।

8. मुक्त काम संयम

मनुष्य को चाहिए कि संकल्प से उत्पन्न होने वाली संपूर्ण कामनाओं को निशेषता से त्याग कर और मन के द्वारा इन्द्रियों के समुदाय को सब ओर से ही अच्छी प्रकार वश में करके क्रम से अभ्यास करता हुआ उपरामता को प्राप्त होवे तथा धैर्य युक्त बुद्धि द्वारा मन को आत्मा में स्थित करके परमात्मा के सिवाय कुछ भी चिन्तन न करे।

यह स्थिर न रहने वाला और चञ्चल मन जिस जिस कारण से सांसारिक पदार्थों में विचरता है उस उस से रोक कर बारंबार आत्मा में ही निरोध करे। क्योंकि जिसका मन अच्छी प्रकार शांत है और जो पाप से रहित है और जिसका रजोगुण शांत हो गया है ऐसे इस सच्चिदानन्दघन ब्रह्म के साथ एकीभाव हुए योगी को अति उत्तम आनन्द प्राप्त होता है। पाप रहित योगी इस प्रकार निरन्तर आत्मा को आत्मा में लगाता हुआ सुख पूर्वक परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त करता है।

9. समदर्शिता संयम

भगवान श्री कृष्ण कहते हैं - हे अर्जुन! सर्वव्यापी अनन्त चेतन में एकीभाव

से स्थिति रूप योग से युक्त हुए आत्मा वाला योगी आत्मा को संपूर्ण भूतों में देखता है और संपूर्ण भूतों को आत्मा में देखता है, और जो संपूर्ण भूतों में मुझे देखता है और संपूर्ण भूतों को मेरे अन्तर्गत देखता है, उस के लिए मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह मेरे लिए अदृश्य नहीं होता है।

जो पुरुष एकीभाव में स्थित हुआ संपूर्ण भूतों में आत्मरूप से स्थित मुझे भजता है वह योगी सब प्रकार बर्तता हुआ भी मेरे में ही बर्तता है।

हे अर्जुन, जो योगी अपनी सादृश्यता से संपूर्ण भूतों में सम देखता है और सुख अथवा दुख को भी सब में सम देखता है वह योगी परमश्रेष्ठ माना गया है।

10. अभ्यास वैराग्य संयम

भगवान के वचनों को श्रवण कर अर्जुन ने कहा - ''हे मधुसूदन, जो यह योग आपने समत्व भाव से कहा है इस की मैं मन के चञ्चल होने से बहुत काल तक ठहरने वाली स्थिति को नहीं देखता हूँ। क्योंकि हे कृष्ण, यह मन बड़ा चञ्चल और प्रमथन स्वभाव वाला है तथा बड़ा दृढ़ और बलवान है। इसलिए उस का वश करना मैं वायु की भांति अति दुष्कर मानता हूँ। ''

भगवान ने कहा - ''हे महाबाहो! निःसंदेह मन चंचल है और कठिनता से वश होने वाला है परन्तु हे कुन्ति पुत्र अर्जुन, अभ्यास और वैराग्य से यह वश में हो जाता है। मन को वश में न करने वाले पुरुष द्वारा योग दुष्प्राप्य है और स्वाधीन मन वाले प्रयत्नशील पुरुष द्वारा साधन करने से प्राप्त होना सहज है। यह मेरा मत है।''

11. कल्याण मार्ग संयम

भगवान की बात को सुनकर अर्जुन ने पूछा - ''हे कृष्ण योग से चलायमान हो गया है मन जिसका ऐसा शिथिल यत्न वाला श्रद्धायुक्त पुरुष योग की सिद्धि को न प्राप्त हो कर किस गति को प्राप्त होता है। क्या वह भगवत् प्राप्ति के मार्ग में मोहित हुआ आश्रय रहित पुरुष छिन्न भिन्न बादल की भाँति दोनों ओर से अर्थात् भगवत् प्राप्ति और सांसारिक भोगों से भ्रष्ट हुआ नष्ट तो नहीं हो जाता है। हे कृष्ण, मेरे इस संशय को संपूर्णता से छेदन करने के लिए आप ही योग्य हैं, क्योंकि आप के सिवाय दूसरा इस संशय को छेदन करने वाला मिलना संभव नहीं है।''

इस प्रकार अर्जुन के पूछने पर श्री कृष्ण भगवान ने कहा, हे पार्थ उस पुरुष का न तो इस लोक में और न परलोक में ही नाश होता है क्योंकि हे प्यारे, कोई भी शुभ कर्म ''कल्याण कृत कर्म'' करने वाला दुर्गति को नहीं प्राप्त होता। किन्तु वह योग भ्रष्ट पुरुष पुण्यवानों के लोकों को अर्थात् स्वर्गादिक उत्तम लोकों को प्राप्त हो कर उनमें वर्षों तक वास करके शुद्ध आचरण वाले श्रीमान पुरुषों के घर में जन्म लेता है। अथवा ज्ञानवान योगियों के ही कुल में जन्म लेता है। इस प्रकार जो यह जन्म है सो संसार में निःसंदेह अति दुर्लभ है। वहां वह उस पहले शरीर में साधन किये हुए बुद्धि के संयोग को अनायास ही प्राप्त हो जाता है और उस के प्रभाव से फिर अच्छी प्रकार भगवत् प्राप्ति के निमित्त यत्न करता है।

वह विषयों के वश में हुआ भी उस पहले के अभ्यास से ही निःसंदेह भगवत् की ओर आकर्षित किया जाता है, समत्व बुद्धि रूप योग का जिज्ञासु भी कर्मों

के फल का उल्लंघन कर जाता है।

अनेक जन्मों से अन्तः करण की शुद्धिरूप सिद्धि को प्राप्त हुआ और अति प्रयत्न से अभ्यास करने वाला योगी संपूर्ण पापों से अच्छी प्रकार शुद्ध हो कर उस साधन के प्रभाव से परमगति को प्राप्त होता है। योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, और शास्त्र के ज्ञान वालों से भी श्रेष्ठ माना गया है तथा सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ है। इसलिए हे अर्जुन तू योगी हो।

हे अर्जुन संपूर्ण योगियों में भी जो श्रद्धावान योगी मेरे में लगे हुए अन्तरात्मा से मेरे को निरन्तर भजता है, वह योगी मुझे परम श्रेष्ठ मान्य है।

इस प्रकार श्री प्रभु जी के मुखारविंद से भगवान कृष्ण द्वारा अर्जुन को बतलाए हुए ग्यारह प्रकार के संयमों का विस्तार पूर्वक वर्णन सुन कर पण्डित ने श्री प्रभु जी से प्रश्न किया ''हे योगिवर, हमने सुना है कि मुक्ति ज्ञान द्वारा होती है। वह ज्ञान क्या है और इन में से किस संयम द्वारा वह ज्ञान अधिक सुलभ है।''

श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया, ''विप्रवर, भगवान द्वारा वर्णित ग्यारह संयमों में से श्रद्धापूर्वक और यत्न पूर्वक किसी एक का भी आचरण करने से, मैं मानता हूँ कि, पूरे ग्यारह के ही उद्देश्य की पूर्ति हो जाती है। और जिस ज्ञान से मुक्ति की प्राप्ति हो उस ज्ञान का उल्लेख अगले पाठ में मिलेगा।''

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'आत्म संयम योग' नाम - छटा अध्याय

दोहा

बिना संयम न योग हो, भयी बात है स्पष्ट।
न को योगी हो सकत, बिना सहे बहु कष्ट॥

सप्तम अध्याय

'ज्ञान विज्ञान योग'

दो०- प्रकृति का जो बोध है, वह जान 'विज्ञान'।
सृष्टि मध्य जो रम रहा, उस का बोध ज्ञान॥

भगवद्भक्ति के साथ-साथ 'ज्ञान' भी मोक्ष प्राप्ति के लिए आवश्यक है। ज्ञान दो प्रकार का होता है। एक 'अध्यात्म ज्ञान' दूसरा 'प्राकृत ज्ञान' या 'विज्ञान'। इस अध्याय में भगवान द्वारा इन दोनों का वर्णन किया है।

श्री कृष्ण भगवान अर्जुन को कहते हैं मैं तेरे लिए 'विज्ञान' सहित 'ज्ञान' को संपूर्णता से कहूँगा जिस को जानकर फिर और कुछ भी जानने योग्य शेष नहीं रहता।

जहां तक अध्यात्म ज्ञान की बात है भगवान कृष्ण कहते हैं कि हज़ारों मनुष्यों में कोई ही मनुष्य मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करता है और उन यत्न करने वाले योगियों में भी कोई ही पुरुष मेरे को तत्व से जानता है। यह ज्ञान दो रूपों में है - (क) जीवात्मा का ज्ञान (ख) ईश्वर का ज्ञान।

प्रकृति का ज्ञान (विज्ञान) प्रकृति के ज्ञान के विषय में भगवान संक्षेप से यह बतलाते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश तथा मन, बुद्धि और अहंकार ऐसे यह आठ प्रकार से विभक्त हुई ईश्वर की प्रकृति है। यह 'अपर' प्रकृति कहलाता है।

यह आठ प्रकार के भेदों वाली 'अपरा' प्रकृति अर्थात् जड़ प्रकृति है।

(क) जीवात्मा का ज्ञान इससे दूसरी ईश्वर की जीवरूप 'पर' अर्थात् चेतन प्रकृति जानो जिस चेतन प्रकृति द्वारा यह संपूर्ण जगत धारण किया जाता है।

ऐसा समझो कि संपूर्ण भूत इन दोनों प्रकृतियों (अपर और पर) से ही उत्पत्ति वाला है। परन्तु इस से परे मैं (ईश्वर) संपूर्ण जगत का उत्पत्ति तथा प्रलय करने वाला हूँ। हे धनञ्जय, मेरे से परे कुछ भी नहीं। यह संपूर्ण जगत सूत्र में मणियों के सदृश मेरे में गुंथा हुआ है। इसे भगवान विस्तार पूर्वक बतलाते हैं :-

(ख) ईश्वर (ब्रह्म) का ज्ञान हे अर्जुन, जल में मैं रस हूँ। चन्द्रमा और सूर्य में प्रकाश हूँ। सर्व वेदों में ओंकार हूँ। आकाश में शब्द और पुरुषों में पुरुषत्व हूँ।

मैं पृथ्वी में पवित्र गन्ध, अग्नि में तेज और संपूर्ण भूतों में जीवन हूँ। तपस्वियों में तप हूँ। हे अर्जुन तू संपूर्ण भूतों का सनातन कारण मेरे को ही जान। मैं बुद्धिमानों की बुद्धि हूँ और तपस्वियों का तेज हूँ।

हे भरत श्रेष्ठ! मैं बलवानों का काम और राग से रहित बल हूँ। मैं सब भूतों में धर्म के अनुकूल अर्थात् शास्त्र के अनुकूल काम हूँ।

जो सत्त्व गुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं और जो रजोगुण से तथा तमोगुण से उत्पन्न होने वाले भाव हैं उन को तू मेरे से ही होने वाले हैं ऐसा जान। परन्तु उन में मैं या वे मेरे में नहीं हैं।

गुणों के कार्यरूप (सात्त्विक, राजस, तामस) इन तीनों प्रकार के भावों से यह सब संसार मोहित हो रहा है इसलिये इन तीनों गुणों से परे मुझ अविनाशी को तत्त्व से नहीं जानता। क्योंकि यह दैवी (अर्थात् अलौकिक और अति अद्भुत) त्रिगुणमयी मेरी 'माया' बड़ी दुस्तर है। परन्तु जो पुरुष मेरे को ही निरन्तर भजते हैं और मेरी शरण में हैं, वे इस माया का उल्लंघन कर जाते हैं।

ईश्वर भक्ति हे अर्जुन उत्तम कर्म करने वाले चार प्रकार के भक्त जन मुझे भजते हैं:-

1. आर्त 2. जिज्ञासु 3. अर्थार्थी 4. ज्ञानी।

उन में नित्य मेरे में एकीभाव से स्थित हुआ अनन्य प्रेम भक्ति वाला, ज्ञानी अति उत्तम है। क्योंकि ज्ञानी को मैं अत्यंत प्रिय हूँ और वह ज्ञानी मेरे को अत्यंत प्रिय है।

ये सब ही उदार हैं परन्तु ज्ञानी तो साक्षात मेरा स्वरूप ही है ऐसा मेरा मत है। क्योंकि वह स्थिर बुद्धि ज्ञानी भक्त अति उत्तम गति स्वरूप मेरे में ही अच्छी तरह स्थित है।

बहुत जन्मों के अन्त में तत्त्व ज्ञान को प्राप्त हुआ ज्ञानी सब कुछ वासुदेव ही है इस प्रकार जान मुझे प्राप्त होता है। ऐसा महात्मा दुर्लभ है।

अन्य जन अपने स्वभाव से प्रेरे हुए उन उन भोगों की कामना से भ्रष्ट हुए उस उस नियम को धारण करके अन्य देवताओं को भजते हैं। परन्तु जो जो सकामी भक्त जिस जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है उस उस भक्त

की मैं उस ही देवता के प्रति श्रद्धा को स्थिर करता हूँ।

वह पुरुष उस श्रद्धा से युक्त हुआ उस देवता के पूजन की चेष्टा करता है और उस देवता से मेरे द्वारा ही विधान किए हुए उन इच्छित भोगों को निःसंदेह प्राप्त होता है।

परन्तु उन अल्प बुद्धिवालों का वह फल नाशवान है तथा वे देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मेरे को ही प्राप्त होते हैं।

भगवान को न पूज कुछ पुरुष अन्य देवताओं को पूजते हैं। इस का कारण भगवान स्वयं अपने मुखारविंद से कथन कर रहे हैं कि बुद्धिहीन पुरुष मेरे अनुत्तम अर्थात् जिस से उत्तम और कुछ भी नहीं ऐसे अविनाशी परमभाव को तत्त्व से न जानते हुए मुझ सच्चिदानन्दघन परमात्मा को मनुष्य की भांति एक व्यक्ति मानते हैं।

इस का भी कारण है क्योंकि अपनी योग माया से छिपा हुआ मैं सब को प्रत्यक्ष नहीं होता हूँ इसलिए यह अज्ञानी मनुष्य मुझ जन्म रहित अविनाशी परमात्मा को तत्त्व से नहीं जानता है।

हे अर्जुन पूर्व में व्यतीत हुए और वर्तमान में स्थित तथा आगे होने वाले सब भूतों को मैं जानता हूँ परन्तु मेरे को कोई भी, श्रद्धा भक्ति रहित, पुरुष नहीं जानता है। हे अर्जुन संसार में इच्छा और द्वेष से उत्पन्न हुए सुख दुख आदि द्वन्द्वों से मुक्त हुए और दृढ़ निश्चय वाले पुरुष मेरे को सब प्रकार से भजते हैं। जो मेरे शरण हो कर जरा और मरण से छूटने के लिए यत्न करते हैं वे पुरुष उस ब्रह्म को तथा संपूर्ण अध्यात्म ज्ञान को और संपूर्ण कर्म ज्ञान को जानते हैं।

जो पुरुष अधिभूत (प्रकृति) और अधिदैव (जीवात्मा) और अधियज्ञ (निष्काम कर्म) इन सभी के सहित मेरे को (ब्रह्म को) जानते हैं वे युक्त चित्त ज्ञानवान पुरुष मुझ (ब्रह्म) को प्राप्त होते हैं।

श्री प्रभु जी से गीता में ऊपर वर्णित प्रकृति (अधिभूत), जीवात्मा (अधिदैव) और 'ब्रह्म' के बारे श्रवण कर पण्डित ने जिज्ञासा प्रकट की कि इस 'ज्ञान विज्ञान' को मैं आप से और विस्तार से सुनना चाहता हूँ। तो श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया कि वास्तव में यह परम गूढ़ ज्ञान है और अगले अध्याय में अर्जुन ने भी भगवान से ऐसी ही जिज्ञासा प्रकट की थी। हम भगवान कृष्ण के शब्दों में ही इसका विस्तृत वर्णन श्रवण करेंगे।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'ज्ञान विज्ञान योग' नाम - सप्तम अध्याय

दोहा

ज्ञान क्या विज्ञान क्या,
इस का जिस को ज्ञान।
उस को ज्ञानी जानिये,
स्पष्ट भया है ज्ञान॥

अष्टम अध्याय

'अक्षर ब्रह्म योग'

दो०- पा कर जिसे न जन्म हो, पुनः जगत में मीत।
'अक्षर-ब्रह्म' जानिये, वर्णन से अतीत॥

पूर्व के अध्याय में भगवान ने अर्जुन को ज्ञान विज्ञान का जो उपदेश दिया था उस में ब्रह्म आदि का उल्लेख किया गया था। उस ज्ञान को पुनः समझाने के लिए अर्जुन भगवान से कहते हैं कि हे कृष्ण जिनका आप ने वर्णन किया है वह 'ब्रह्म' क्या है, और 'अध्यात्म' क्या है तथा 'कर्म' क्या है और 'अधिभूत' क्या है तथा 'अधिदैव' क्या है। मुझे स्पष्टतया बतलायें और यह भी बतलायें कि 'अधियज्ञ' किसे कहते हैं। और अन्त समय में आप किस प्रकार जाने जा सकते हैं।

अर्जुन को भगवान समझाते हुए कहते हैं :-

1. परम अक्षर अर्थात् जिस का कभी नाश नहीं होता, ऐसा सच्चिदानन्दघन परमात्मा 'ब्रह्म' है।
2. अपना स्वरूप अर्थात् व्यक्ति का स्वरूप 'अध्यात्म' है।
3. जगत में भूत पदार्थों को उत्पन्न करने वाली क्रिया 'कर्म' है।
4. उत्पत्ति विनाश धर्म वाले सब पदार्थ 'अधिभूत' हैं।

5. पुरुष अर्थात् जीवात्मा 'अधिदैव' है।

6. देह धारियों में श्रेष्ठ मैं (कृष्ण) 'अधियज्ञ' हूँ यज्ञेश्वर।

अन्त समय में भगवान को कैसे प्राप्त किया जा सकता है ?-

इस विषय में भगवान कृष्ण अर्जुन को समझाते हैं कि ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए पुरुष को जो करना आवश्यक है, वह इस प्रकार से है:-

जो पुरुष अन्त काल में मेरे को ही स्मरण करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है वह मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है, इस में संशय नहीं है। इसका कारण यह है कि अन्त काल में जिस जिस भी भाव को स्मरण करता हुआ शरीर को त्यागता है उस उस को ही प्राप्त होता है। इसलिए हे अर्जुन! तू सब समय में मेरा स्मरण कर और साथ युद्ध भी कर। इस प्रकार मेरे में अर्पण किए हुए मन बुद्धि से युक्त हुआ मेरे को ही प्राप्त होगा।

हे पार्थ, यह नियम है कि परमेश्वर के ध्यान के अभ्यास रूप योग से युक्त अन्य तरफ न जाने वाले, चित्त से निरन्तर चिन्तन करता हुआ पुरुष परम दिव्य पुरुष को अर्थात् परमेश्वर को ही प्राप्त होता है।

'ब्रह्म ध्यान' अन्त काल में

जो पुरुष सर्वज्ञ, अनादि, सब के नियन्ता सूक्ष्म से भी अति सूक्ष्म सब के धारण पोषण करने वाले अचिन्तय स्वरूप, सूर्य के सदृश नित्य चेतन प्रकाश रूप, अविद्या से अति परे शुद्ध सच्चिदानन्दघन परमात्मा को स्मरण करता है, वह भक्ति युक्त पुरुष अन्त काल में योग बल से भृकुटी के मध्य में प्राण को

अच्छी प्रकार स्थापन करके फिर निश्चल मन से स्मरण करता हुआ उस दिव्य स्वरूप परम पुरुष परमात्मा को ही प्राप्त होता है।

भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि वेद के जानने वाले (विद्वान) जिस सच्चिदानन्दघन स्वरूप परम पद को 'ओंकार' नाम से कहते हैं और आसक्ति रहित यत्नशील महात्मा जन जिस में प्रवेश करते हैं तथा जिस परमपद को चाहने वाले ब्रह्मचर्य का आचरण करते हैं उस परमपद को तेरे लिए संक्षेप से कहूँगा।

हे अर्जुन! सब इन्द्रियों के द्वार को रोक कर अर्थात् इन्द्रियों को विषयों से हटा कर तथा मन को हृदय में स्थिर करके और अपने प्राण को मस्तक में स्थापन करके योग धारणा में स्थित हुआ जो पुरुष ''ॐ'' ऐसे इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उस के अर्थ स्वरूप (मेरे को) चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है वह पुरुष परम गति को प्राप्त होता है।

हे अर्जुन! जो पुरुष अनन्य चित्त से स्थित हुआ सदा ही निरन्तर मेरे को स्मरण करता है उस नित्य युक्त हुए योगी के लिए मैं सुलभ हूँ। और वे परम सिद्धि को प्राप्त हुए महात्मा जन मेरे को प्राप्त होकर दुख के स्थान रूप क्षण भङ्गुर पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होते हैं। क्योंकि:-

ब्रह्मलोक

हे अर्जुन ब्रह्मलोक से लेकर सब लोक पुनरावर्ती स्वभाव वाले हैं परन्तु मेरे को प्राप्त हो कर उस का जन्म नहीं होता है।

भगवान बतलाते हैं कि ब्रह्मलोक में काल की गणना बेहिसाब है परन्तु वे लोक भी काल की गति से बचे हुए नहीं है। केवल परमात्मा उस काल से परे

है। ब्रह्म लोक में काल का हिसाब इस प्रकार से है। ब्रह्मा का जो एक दिन है यह हज़ार चौकड़ी युग तक अवधि वाला और उसकी रात्रि भी हज़ार चौकड़ी युग तक अवधि वाली है।

संपूर्ण भूत गण ब्रह्मा के दिन होने पर अव्यक्त (निराकार) से व्यक्त (साकार) हो जाते हैं और ब्रह्मा की रात्रि होने पर फिर अव्यक्त में लय हो जाते हैं।

इस प्रकार ब्रह्मा के सौ वर्ष पूर्ण होने पर अपने लोक सहित ब्रह्मा भी शांत हो जाता है और अव्यक्त हो जाता है।

अक्षर ब्रह्म

परन्तु उस अव्यक्त से भी परे दूसरा जो सनातन अव्यक्त भाव है वह परमात्मा सब भूतों के नष्ट होने पर भी नष्ट नहीं होता।

उस अव्यक्त को 'अक्षर' कहते हैं। उसे ही परम गति कहते हैं जिसे प्राप्त करके लौटना नहीं होता। भगवान कहते हैं कि वह मेरा परमधाम जान। उस परमधाम की प्राप्ति का उपाय भगवान के शब्दों में इस प्रकार से है-

हे पार्थ! जिस के अन्तर्गत सब भूत हैं और जिससे यह सब परिपूर्ण है वह परम पुरुष 'अनन्य भक्ति' से प्राप्त होने योग्य है।

मरणोपरान्त जीव की गतियां शुक्ल और कृष्ण

भगवान कृष्ण अर्जुन को योग ध्यान के दो भिन्न-भिन्न रूप बतलाते हैं। योगी कि दो गतियां होती हैं, 'शुक्ल गति' और 'कृष्ण गति'। जो छः मास तक शरीर के उत्तरायण की ओर अर्थात् सहस्त्रार चक्र की दिशा में ध्यान एकाग्र करता है उस की 'शुक्ल गति' होती है। और शरीर के दक्षिणायन अर्थात्

मूलाधार चक्र की ओर ध्यान एकाग्र करता है उस की कृष्ण गति होती है।

उत्तरायण मार्ग में मर कर गये हुए ब्रह्मवेत्ता योगिजन ब्रह्म को प्राप्त होते हैं।

दक्षिणायन मार्ग में मर कर गये हुए योगीजन लौट कर संसार में जन्म लेते हैं।

भगवान अन्त में कहते हैं कि इन दोनों मार्गों (उत्तरायण और दक्षिणायण) को जान कर योगी मोहित नहीं होता और उत्तरायण मार्ग का ही अनुसरण करता है। भगवान के शब्दों में योगी पुरुष इस रहस्य को तत्त्व से जान कर वेदों को पढ़ने में तथा यज्ञ, तप और दान आदि के करने में जो पुण्यफल कहा गया है उस सब को निःसंदेह उल्लंघन कर जाता है और सनातन परमपद को प्राप्त होता है।

श्री प्रभु जी के मुखारविंद से श्रवण कर पण्डित कुछ चकित हुआ और अक्षर ब्रह्म के प्राप्ति हेतु उत्तरायण मार्ग की नूतन व्याख्या पा कर श्री प्रभु जी से कहने लगा -

योगिवर आपने वास्तव में गीता के गूढ़ रहस्यों को कृपा कर बतलाया है। परन्तु अक्षर ब्रह्म की प्राप्ति तो विरले योगी को ही होनी संभव है। क्या कोई ऐसी साधना नहीं जिसे साधारण जन भी कर सकें।

पण्डित की जिज्ञासा को श्रवण कर श्री प्रभु जी ने कहा- हे विप्रवर अगले पाठ में गीता भी उस मार्ग को बतलाती है जो हर एक के लिए सुलभ है।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'अक्षर ब्रह्म योग' नाम - अष्टम अध्याय

दोहा

ब्रह्म कहो परब्रह्म व, अक्षरब्रह्म व तात।
ब्रह्म सर्वत्र रम रहा, सृष्टि में साक्षात ॥

नवम अध्याय

'राज विद्या राजगुह्य योग'

दो०- 'राज विद्या' प्रभु भक्ति है, गुप्त रहे मन माहीं।
'राज-गुह्य' तो योग की, तुलना न जग माहीं॥

श्री प्रभु जी ने पण्डित से कहा हे विप्रवर आप ने मोक्ष का सुगम मार्ग जन साधारण के लिए पूछा था। श्री भगवान कृष्ण चन्द्र के अनुसार मोक्ष प्राप्ति का सुगमतम मार्ग प्रभु भक्ति ही है और इसे 'राजमार्ग' की संज्ञा दी है। राजमार्ग का अर्थ है सर्वसाधारण के लिए मार्ग (Royal Road)। इस अध्याय में पुरुष अपनी रुचि अनुसार भक्ति करने में स्वतन्त्र है और भगवान भक्त की भक्ति को स्वीकार करते हैं चाहे वह किसी प्रकार से करे। परन्तु शर्त है कि वह श्रद्धा पूर्वक हो। भगवान कृष्ण अर्जुन को कहते हैं:-

हे परंतप! इस मार्ग में श्रद्धा रहित पुरुष मेरे को न प्राप्त हो कर मृत्यु रूप संसार चक्र में भटकते रहते हैं। भक्ति के भिन्न-भिन्न प्रकार आगे वर्णित किए हैं। भगवान को सभी स्वीकार हैं , यदि वे श्रद्धा पूर्वक हों।

भगवान का स्वरूप

भगवान श्रद्धावान भक्तों के हित के लिए अपना स्वरूप और अपनी रचना को इस प्रकार बतलाते हैं :-

अव्यक्त रूप में मैं सब जगत में परिपूर्ण हूँ और सब भूत मेरे अन्तर्गत हैं परन्तु मैं उन में स्थित नहीं हूँ।

भूत मेरे में स्थित नहीं और न मैं ही उन में स्थित हूँ। मेरी योग माया के प्रभाव को देख कि भूतों का धारण पोषण करने वाला और भूतों को उत्पन्न करने वाला मेरा आत्मा वास्तव में भूतों में स्थित नहीं।

परन्तु फिर भी जैसे सर्वत्र विचरने वाला महान वायु सदा ही आकाश में स्थित है वैसे सम्पूर्ण भूत मेरे में स्थित हैं, ऐसे जानो।

भूतों और ईश्वर को अलग नहीं किया जा सकता। भगवान कहते हैं कल्प के अन्त में सब भूत मेरी प्रकृति को प्राप्त होते हैं अर्थात् प्रकृति में लय होते हैं और कल्प के आदि फिर मैं उन्हें सिरजन करता हूँ।

इसी प्रकार बार बार मैं अपनी प्रकृति को अंगीकार करके इस संपूर्ण भूत समुदाय को रचता हूँ।

परन्तु ईश्वर उस कर्म को करता हुआ भी अछूता रहता है इस विषय में भगवान कहते हैं, उन कर्मों में आसक्तिरहित और उदासीन के सदृश स्थित हुए मुझ परमात्मा को वे कर्म नहीं बांधते हैं।

भगवान की स्थिति केवल अध्यक्ष की ही है। भगवान कृष्ण इस प्रसंग में कहते हैं हे अर्जुन मुझ अधिष्ठाता के सकाश से (वर्तमान होने से) माया चराचर जगत को रचती है और इस हेतु से ही यह संसार इस चक्र में घूमता है।

1. 'अनन्य' भक्ति मार्ग

भगवान कृष्ण कहते हैं कि मेरे इस ईश्वरीय स्वरूप को सब नहीं जानते। इसलिए संपूर्ण भूतों के महान ईश्वर रूप मेरे परम भाव को न जानने वाले मूढ़ लोग मनुष्य का शरीर धारण करने वाले मुझ परमात्मा को तुच्छ समझते हैं और

अवज्ञा भी करते हैं। परन्तु सभी मनुष्य ऐसे नहीं हैं। कुछ ज्ञानी लोग मेरे वास्तविक स्वरूप को समझते हैं। भगवान कहते हैं - हे अर्जुन, दैवी प्रकृति के आश्रित हुए जो महात्मा जन हैं वे मेरे को सब भूतों का सनातन कारण अक्षर स्वरूप जानकर अनन्य मन से युक्त हुए मुझे निरन्तर भजते हैं वे दृढ़ निश्चय वाले निरन्तर मेरे नाम और गुणों का कीर्तन करते हुए तथा मेरी प्राप्ति के लिए यत्न करते हुए मेरे को बार- बार प्रणाम करते हैं और भक्ति से मेरी उपासना करते हैं।

2. 'ज्ञान यज्ञ' भक्ति मार्ग

कुछ लोग ज्ञान यज्ञ द्वारा भक्ति करते हैं। वे भगवान को एक रूप में भी देखते हैं और अनेक रूपों में भी। उन का ज्ञान, यज्ञ का ही रूप होता है जिस में ज्ञान के अतिरिक्त और कुछ नहीं होता। यज्ञ में जो जो विधियां अथवा सामग्रियां हुआ करती हैं वे उनके पास कुछ नहीं। भगवान ही उन के लिए प्रति वस्तु का प्रतीक है। भगवान कहते हैं उन के लिए श्रौतकर्म (क्रतु) भी मैं हूँ और स्मार्त कर्म (यज्ञ) भी मैं हूँ। स्वधा (यज्ञ में दिया जाने वाला अन्न) भी मैं हूँ। हवन सामग्री भी मैं हूँ, यज्ञ के मन्त्र भी मैं हूँ। यज्ञ की अग्नि भी मैं हूँ, हवन की क्रिया भी मैं हूँ।

इस प्रकार वे मुझ परमात्मा को अपने ज्ञान चक्षुओं द्वारा केवल सर्वत्र मुझे ही देखते हैं।

उनकी दृष्टि में संसार का पिता, माता, पालन करने वाला धाता, पितामहा, ज्ञान, पवित्र ओंकार, ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद मैं ही हूँ।

उन के लिए गति (प्राप्त होने योग्य), भर्त्ता (भरण पोषण करने वाला),

प्रभु (स्वामी), साक्षी (शुभाशुभ देखने वाला) निवास (सब का वास स्थान), शरण (शरण लेने योग्य), सुहृद (हित करने वाला), प्रभव (उत्पत्ति), प्रलय, स्थान (सब का आधार), अव्यय (अविनाशी), बीज (कारण) मैं ही हूँ।

उनके लिए मैं ही सूर्य रूप हुआ तपाता हूँ, मैं ही वर्षा करता हूँ, मैं ही निग्रह करता हूँ व त्यागता हूँ, मैं ही अमृत हूँ, मृत्यु हूँ, सत और असत सब कुछ मैं ही हूँ।

ज्ञान द्वारा ज्ञानी पुरुष का इस प्रकार का 'ज्ञान यज्ञ' ही उस की भक्ति है।

3. 'वैदिक सकाम कर्मों द्वारा' भक्ति मार्ग

वैदिक सकाम कर्मों में युक्त भक्तों के प्रति भगवान कहते हैं कि तीनों वेदों में विधान किए हुए सकाम कर्मों को करने वाले और सोमरस को पीने वाले, पापों से पवित्र हुए पुरुष स्वर्ग की प्राप्ति को चाहते हैं। वे पुरुष अपने पुण्यों के फल रूप इन्द्र लोक को प्राप्त हो कर स्वर्ग में दिव्य देवताओं के भोगों को भोगते हैं। वे उस विशाल स्वर्ग को भोग कर पुण्य क्षीण होने पर मृत्यु लोक को प्राप्त होते हैं। इस प्रकार तीनों वेदों में कहे हुए सकाम कर्म के शरण हुए भोगों की कामना वाले पुरुष बारम्बार जाने आने को प्राप्त होते हैं।

4. भगवान श्री कृष्ण की 'निष्काम भक्ति'

भगवान कृष्ण अपने भक्तों के विषय में बतलाते हुए कहते हैं कि जो अनन्य भाव से मेरे में स्थित हुए भक्तजन मुझ परमेश्वर को निरन्तर चिन्तन करते हुए निष्काम भाव से भजते हैं उन नित्य एकीभाव से मेरे में स्थिति वाले पुरुषों का योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त करा देता हूँ।

हे कौंतेय, यद्यपि श्रद्धा से युक्त हुए जो जो सकामी भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं वे भी मेरे को ही पूजते हैं परन्तु उन का वह पूजना अविधिपूर्वक है। क्योंकि संपूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी भी मैं ही हूँ परन्तु वे मुझ अधियज्ञ स्वरूप परमेश्वर को तत्व से नहीं जानते हैं इसी से गिरते हैं अर्थात् पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं।

देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मेरे भक्त मेरे को ही प्राप्त होते हैं।

पत्र, पुष्प, फल, जल इत्यादि जो कोई भक्त मेरे लिए प्रेम से अर्पण करता है उस शुद्ध बुद्धि वाले निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेम पूर्वक अर्पण किया हुआ वह पत्र पुष्पादिक मैं खाता हूँ। हे अर्जुन, तू जो कुछ कर्म करता है, जो कुछ खाता है, जो कुछ हवन करता है, जो कुछ दान देता है, जो कुछ तप करता है वह सब मेरे अर्पण कर।

इस प्रकार कर्मों को मेरे अर्पण करने रूप सन्यास योग से युक्त हुए मन वाला तू शुभाशुभ फल रूप कर्म बंधन से मुक्त हो जायेगा और उन से मुक्त हुआ मेरे को ही प्राप्त होगा।

मैं सब भूतों में समभाव से व्यापक हूँ। न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है, परन्तु जो भक्त मेरे को प्रेम से भजते हैं वे मेरे में और मैं भी उन में हूँ।

---

1. भक्ति के भिन्न-भिन्न मार्ग
   1. अनन्य भक्ति मार्ग
   2. ज्ञान यज्ञ भक्ति मार्ग
   3. वैदिक सकाम कर्मों द्वारा भक्ति मार्ग
   4. भगवान श्री कृष्ण की निष्काम भक्ति

यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्य भावे से मेरा भक्त हुआ, मेरे को निरन्तर भजता है वह साधु ही मानने योग्य है क्योंकि वह यथार्थ निश्चय वाला है।

वह शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और सदा रहने वाली परमशान्ति को प्राप्त होता है। हे अर्जुन तू निश्चय पूर्वक सत्य जान कि मेरा भक्त नष्ट नहीं होता। हे अर्जुन, पाप योनियों वाले भी जो कोई होवें वे भी मेरे शरण हो कर परमगति को प्राप्त होते हैं।

हे अर्जुन, केवल मुझ परमात्मा में ही अचल मनन वाला हो और मेरा ही भक्त हो और मेरी ही पूजा कर, मुझे ही नमस्कार कर। इस प्रकार मेरे शरण हुआ तू मेरे में एकीभाव कर के मेरे को ही प्राप्त होगा।

पण्डित ने श्री प्रभु जी से चारों प्रकार की भक्ति विधियां श्रवण कीं और इस प्रकार भगवान कृष्ण की भक्ति विधि में सुना कि भगवान सब भूतों में समभाव से व्यापक हैं तो उस के मन जिज्ञासा उत्पन्न हुई कि जब भगवान सर्वव्यापक हैं तो उन के दर्शन कैसे हों। इस जिज्ञासा को श्री प्रभु जी के चरणों में प्रकट किया। श्री प्रभु जी ने कहा कि अगले पाठ में यही देखेंगे कि सर्वव्यापक भगवान को कहां देख सकते हैं।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'राजविद्या राजगुह्य योग' नाम -
नवम् अध्याय

दोहा

पूर्ण भया अब पाठ यह, "राजविद्या" का मीत।
श्रद्धा जिस के मन बसत, वही चले इस रीत ॥

दशम अध्याय

'विभूति योग'

दो०- कण कण में ईश्वर रमा, एक विलक्षण रूप।
उसी रूप को समझ लो, प्रभु 'विभूति' अनूप॥

पण्डित ने श्री प्रभु जी से यह प्रश्न किया था कि सर्वव्यापक भगवान के दर्शन कैसे किये जायें। इस के उत्तर में श्री प्रभु जी ने कहा कि निःसंदेह भगवान चराचर में सर्वत्र व्याप्त हैं। सकल सृष्टि भगवान की ही रचना है। परन्तु उन को देखना या जानना सुगम नहीं। भगवान ने जो इस अध्याय में स्वयं वर्णन किया है उसी द्वारा भगवान का मनन करना चाहिए और चराचर जग में जो अपनी विभूतियां बतलाई हैं उन विभूतियों को देखें। जहां-जहां भगवान का चमत्कार दिखलाई देता है सहृदय भक्त उन्हें देख जब भक्ति विभोर हो जाते हैं तो उन्हीं विभूतियों में उन्हें साक्षात भगवान के भी दर्शन होने लगते हैं।

1. भगवान की विभूति-'सृष्टि निर्माण'

भगवान अपने श्री मुख से कहते हैं कि मेरी उत्पत्ति को न देवता लोग जानते हैं और न ही महर्षिजन क्योंकि मैं सब प्रकार से देवताओं का और महर्षियों का आदि कारण हूँ।

जो मेरे को अजन्मा और अनादि तथा सर्व लोकों का महान ईश्वर जानता है वह मनुष्यों में ज्ञानवान पुरुष सर्व पापों से मुक्त हो जाता है। भगवान कहते हैं कि

सदाचार और योग धर्म के जो भी सद्गुण हैं, और संसार में जो भी होता है उस का आधार मैं ही हूँ। बुद्धि, ज्ञान, अमूढ़ता, क्षमा, सत्य, दम, शम, सुख, दुःख, उत्पत्ति, प्रलय, भय, अभय, अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, कीर्ति, अपकीर्ति और प्राणियों के नाना प्रकार के भाव मेरे से ही होते हैं।

[1]सात महर्षिजन और उन से भी पूर्व होने वाले [2]चार सनक आदि तथा स्वायंभुव आदि [3]चौदह मनु ये मेरे संकल्प से ही उत्पन्न हुए हैं। जिन से यह सारी प्रजा है।

जो पुरुष इस मेरी विभूति को और योग शक्ति को तत्त्व से जानता है वह पुरुष निश्चल योग द्वारा मेरे में ही एकीभाव से स्थित है।

इस प्रकार हे अर्जुन मैं संपूर्ण जग की उत्पत्ति का कारण हूँ और मेरे से ही सब जगत चेष्टा करता है।

भगवान के वचन श्रवण कर अर्जुन ने कहा हे कृष्ण आप जो कहते हैं इस समस्त को मैं सत्य मानता हूँ। आप के स्वरूप को न दानव जानते हैं और न

---

1. सात ऋषि
   1. अरीचि 2. अत्रि 3. अंगिरस 4. पुलस्त्य 5. पुलह 6. क्रतु 7. वसिष्ठ
2. चार - सनक, सनातन, सनतकुमार, सनन्दन
3. चौदह मनु -
   1. स्वायंभुव 2. स्वारोचिष 3. औत्तमि 4. तामस 5. रैवत 6. चाक्षुष 7. वैवस्वत 8. सावर्णि 9. दक्ष सावर्णि 10. ब्रह्म सावर्णि 11. धर्म सावर्णि 12. रुद्र सावर्णि 13. देव सावर्णि 14. इंद्र सावर्णि

देवता ही जानते हैं। हे भूतों को उत्पन्न करने वाले, हे भूतों के ईश्वर, हे देवों के देव, हे जगत के स्वामी, हे पुरुषोत्तम, आप स्वयं ही अपने से आप को जानते हैं।

आप ही उन अपनी दिव्य विभूतियों को संपूर्णता से कहने के लिए योग्य हैं जिन विभूतियों के द्वारा इन सब लोकों को व्याप्त करके स्थित हैं। हे जर्नार्दन! अपनी योग शक्ति को और विभूतियों को विस्तार पूर्वक कहिए। अर्जुन की प्रार्थना सुनकर भगवान कृष्ण ने कहा-हे कुरुश्रेष्ठ! मैं तेरे लिए अपनी विभूतियों को प्रधानता से स्वयं कहूँगा। क्योंकि मेरे विस्तार का अन्त नहीं है मैं सब भूतों के हृदय में स्थित सब का आत्मा हूँ तथा संपूर्ण भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ।

श्री प्रभु जी ने पण्डित से कहा - हे विप्रवर, इस अध्याय में भगवान ने विभूतियों का वर्णन विस्तार पूर्वक किया है। सारी सृष्टि जड़, चेतन, भूचर, नभचर, व्योमचर, द्विपाद, चतुष्पाद, अपाद, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, देव, मनुष्य, दानव, दैत्य आदि सभी में भगवान की विभूतियों का उल्लेख है।

भगवान कहते हैं हे अर्जुन, मैं अदिति के बारह पुत्रों में विष्णु हूँ, ज्योतियों में सूर्य हूँ, मरुतों में मरीचि हूँ, नक्षत्रों में चन्द्र हूँ, वेदों, में सामवेद हूँ। देवों में इन्द्र हूँ, इन्द्रियों में मन हूँ, भूतों में चेतना हूँ, रुद्रों में शंकर हूँ, यक्ष और राक्षसों में कुबेर हूँ, वसुओं में अग्नि हूँ, पर्वतों में सुमेरु पर्वत हूँ, पुरोहितों में बृहस्पति हूँ, सेनापतियों में स्कन्द हूँ, जलाशयों में समुद्र हूँ, महर्षियों में भृगु हूँ, वचनों में अक्षर हूँ, जपों में जप यज्ञ हूँ, स्थावरों में हिमालय हूँ, वृक्षों में पीपल वृक्ष हूँ,

देवर्षियों में नारद हूँ, गंधर्वों में चित्ररथ हूँ, सिद्धों में कपिल हूँ, घोड़ों में उच्चैः श्रव हूँ, हाथियों में ऐरावत हूँ, गौओं में कामधेनु हूँ, प्रजन शक्तियों में कामदेव हूँ, सर्पों में वासुकि हूँ, नागों में शेषनाग हूँ, [1]यादसों में वरुण हूँ, पितरों में अर्यमा हूँ, शासन करने वालों में यमराज हूँ, दैत्यों में प्रह्लाद हूँ, गिनती करने वालों में समय हूँ, पशुओं में सिंह हूँ, पक्षियों में गरुड़ हूँ, पवित्र करने वालों में वायु हूँ, शस्त्रधारियों में राम हूँ, मछलियों में मगरमच्छ हूँ, नदियों में गंगा हूँ, सृष्टियों में आदि अंत और मध्य हूँ, विद्याओं में अध्यात्म विद्या हूँ, विवाद करने वालों में तत्त्व निर्णय हूँ, अक्षरों में अकार हूँ, समासों में द्वन्द्व समास हूँ, मैं ही अक्षय काल हूँ, विराट स्वरूप सब का पोषण करने वाला हूँ, सब का नाश करने वाला मृत्यु हूँ, भविष्य में होने वालों के लिए उद्धव हूँ, स्त्रियों में कीर्ति, श्री, वाक्, स्मृति, मेधा, धृति और क्षमा हूँ, गायन करने योग्य श्रुतियों में बृहत्साम हूँ, छन्दों में गायत्री हूँ, मासों में मार्गशीर्ष हूँ, ऋतुओं में बसन्त ऋतु हूँ, छल करने वालों में जुआ हूँ, और तेजस्वियों का मैं तेज हूँ, जीतने वालों की विजय हूँ, निश्चय करने वालों का निश्चय हूँ, सात्त्विक पुरुषों का सात्त्विक भाव हूँ, वृष्णियों में वासुदेव हूँ, पांडवों में धनञ्जय हूँ, मुनियों में वेद व्यास हूँ, कवियों में उशना कवि हूँ, दमन करने वालों का दण्ड हूँ, जीतने की इच्छा वालों की नीति हूँ, गुप्त रखने वाले भावों में मौन हूँ, ज्ञानवानों का ज्ञान हूँ, सब भूतों की उत्पत्ति का कारण बीज हूँ, चर और अचर कोई भी भूत नहीं जो मेरे से रहित हो।

अन्त में भगवान कृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन मेरी दिव्य विभूतियों का अन्त नहीं है। यह तो मैंने संक्षेप से ही कहा है।

---

1. यादस - समुद्री दानव Sea monster

जो जो भी विभूतियुक्त अर्थात् ऐश्वर्ययुक्त एवं कान्तियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है उस को तू मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुई जान। अथवा हे अर्जुन इस बहुत जानने से तेरा क्या प्रयोजन है मैं इस संपूर्ण जगत को अपनी योगमाया के एक अंशमात्र से धारण करके स्थित हूँ।

पण्डित ने भगवान की विभूतियों के विषय में सुन कर श्री प्रभु जी से कहा हे योगिराज, जिन सर्वेश्वर प्रभु की यह विभूतियां हैं क्या यह भी संभव है कि भक्त को उन के साक्षात दर्शन हो सकें। श्री प्रभु जी ने कहा हे विप्रवर तुम्हें इस प्रश्न का उत्तर अगले पाठ में मिल जाएगा।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'विभूति योग' नाम - दशम अध्याय

दोहा

जग में प्रभु को देखना,
यह भी है योग।
"प्रभु प्रभु" ही करत रहें,
यही विभूति योग॥

ग्यारहवां अध्याय

'विश्वरूप दर्शन योग'

दो०- सर्व 'विश्व' में रम रहा, सर्व 'विश्व' उस माहीं।
गुरु कृपा से प्रकट होत, गुरु भक्त के ताहीं॥

भगवान कृष्ण से विभूतियों का विस्तारपूर्वक वर्णन श्रवण कर अर्जुन ने उनसे कहा ''मेरे पर अनुग्रह करने के लिए परम गोपनीय अध्यात्म विषयक उपदेश आप के द्वारा जो कहा गया उस से मेरा यह अज्ञान नष्ट हो गया है। क्योंकि हे कमलनेत्र, भूतों की उत्पत्ति और प्रलय आप से विस्तार पूर्वक सुने हैं तथा आप का अविनाशी प्रभाव भी सुना है।

हे परमेश्वर, आप अपने को जैसा कहते हो वह ठीक ऐसा ही है परन्तु हे पुरुषोत्तम, मैं आप के ऐश्वर्य रूप को देखना चाहता हूँ। आप अपने अविनाशी स्वरूप का मुझे दर्शन कराइये।''

अर्जुन के वचनों को सुन भगवान बोले ''तू बेशक मेरे सैंकड़ों तथा हजारों नाना प्रकार के और नाना वर्ण तथा आकृति वाले अलौकिक रूपों को देख परन्तु मेरे उन रूपों को इन अपने नेत्रों द्वारा देखने को तू निःसंदेह समर्थ नहीं है। इसी से मैं तेरे लिए दिव्य चक्षु देता हूँ। मेरे प्रभाव को और योगशक्ति को देख।''

इस प्रकार कह कर योगेश्वर भगवान कृष्ण ने अर्जुन को परम ऐश्वर्ययुक्त दिव्य स्वरूप दिखाया। अनेक मुख और नेत्रों से युक्त तथा अनेक अद्भुत

दर्शनों वाले एवं बहुत से भूषणों से युक्त और बहुत से दिव्य शस्त्रों को हाथों में उठाये हुए, दिव्य माला और वस्त्रों को धारण किये हुंए और दिव्य गन्ध का अनुलेपन किये हुए एवं सब प्रकार के आश्चर्यों से युक्त सीमा रहित विराट स्वरूप परमेश्वर को अर्जुन ने देखा।

श्री प्रभु जी पण्डित को बतलाते हैं कि गीता में उस विराट स्वरूप के तेज का वर्णन इस प्रकार किया गया है कि आकाश में हज़ार सूर्यों के एक साथ उदय होने से उत्पन्न हुआ जो प्रकाश होवे वह भी उस विश्वरूप परमात्मा के प्रकाश के सदृश कदापि ही होवे।

और हे विप्रवर, गीता में उस विराट स्वरूप के विस्तार का वर्णन करते हुए गीता में लिखा है कि अर्जुन ने उस काल अनेक प्रकार से विभक्त हुए संपूर्ण जगत को उस देवों के देव भगवान के शरीर में एक जगह स्थित हुए देखा।

इस विराट रूप को देख आश्चर्य से युक्त हुआ हर्षित रोमों वाला अर्जुन भगवान को सिर से प्रणाम करके हाथ जोड़े हुए बोला:-

विश्व रूप वर्णन

हे देव आप के शरीर में संपूर्ण देवों को तथा अनेक भूतों के समुदाय को और कमल के आसन पर बैठे हुए ब्रह्मा को तथा महादेव को और संपूर्ण ऋषियों को तथा दिव्य नागों को देखता हूँ। इस प्रकार अर्जुन ने उन दिव्य चक्षुओं से भगवान के जिस विराट रूप को देखा उस का वर्णन इस 'विश्व रूप दर्शन अध्याय' में अर्जुन के शब्दों में इस प्रकार से है :-

विश्वरूप

अर्जुन कहता है - ''हे विश्वेश्वर आप को अनेक हाथ पेट और मुख तथा नेत्रों से युक्त तथा सब ओर से अनन्त रूपों वाला देखता हूँ। आप के न अन्त को देखता हूँ तथा न मध्य को और न आदि को ही।

आप का मैं मुकुटयुक्त, गदायुक्त और चक्रयुक्त, तथा सब ओर से प्रकाशमान, तेज का पुञ्ज प्रज्वलित अग्नि और सूर्य सदृश ज्योतियुक्त देखने में अति गहन और अप्रमेय स्वरूप सब ओर से देखता हूँ।

आप को आदि अन्त और मध्य से रहित तथा अनन्त सामर्थ्य से युक्त और अनन्त हाथों वाला तथा चन्द्र सूर्य रूप नेत्रों वाला और प्रज्वलित अग्निरूप मुख वाला तथा अपने तेज से इस जगत को तपायमान करता हुआ देखता हूँ।

हे महात्मन! यह स्वर्ग और पृथ्वी के बीच का संपूर्ण आकाश तथा सब दिशाएं एक आप से ही परिपूर्ण तथा आप के इस अलौकिक और भयंकर रूप को देखकर तीनों लोक अति व्यथा को प्राप्त हो रहे हैं।

वे सब देवताओं के समूह आप में ही प्रवेश करते हैं और कई एक भयभीत होकर हाथ जोड़े हुए आप के नाम और गुणों का उच्चारण करते हैं तथा महर्षि और सिद्धों के समुदाय 'कल्याण होवे' ऐसा कह कर उत्तम स्तोत्रों द्वारा आप की स्तुति करते हैं।

ये जो एकादश रुद्र और द्वादश आदित्य तथा आठ वसु और साध्यगण, विश्वदेव तथा अश्विनी कुमार और मरुद्गण और पितरों का समुदाय तथा गन्धर्व, यक्ष, राक्षस और सिद्धगणों के समुदाय हैं वे सब ही विस्मित हुए आप को देखते हैं।

वे सब ही धृतराष्ट्र के पुत्र राजाओं के समुदाय सहित आप में प्रवेश करते हैं और भीष्म पितामह, द्रोणाचार्य तथा वह कर्ण और हमारे पक्ष के भी प्रधान योधाओं के सहित सब के सब वेगयुक्त हुए आप के विकराल जाड़ों वाले भयानक मुखों में प्रवेश करते हैं और कई एक चूर्ण हुए सिरों सहित आप के दांतों के बीच में लगे हुए दीखते हैं।

जैसे नदियों के बहुत से जल के प्रवाह समुद्र के ही सन्मुख दौड़ते हैं अर्थात् समुद्र में प्रवेश करते हैं वैसे ही वे शूरवीर मनुष्यों के समुदाय भी आप के प्रज्वलित हुए मुख में प्रवेश करते हैं।

जैसे पतङ्गे नष्ट होने के लिए प्रज्वलित अग्नि में अति वेग से प्रवेश करते हैं वैसे ही यह सब लोग भी अपने नाश के लिए आप के मुखों में अति वेग से युक्त हुए प्रवेश करते हैं।

आप संपूर्ण लोकों को प्रज्वलित मुखों द्वारा ग्रसन करते हुए सब ओर से चाट रहे हैं। हे विष्णो आप का उग्र प्रकाश संपूर्ण जगत को तेज के द्वारा परिपूर्ण करके तपायमान करता है।''

दिव्य दृष्टि से यह सब देख अर्जुन ने विश्वरूप भगवान से विनम्र प्रार्थना की- ''हे भगवान मेरे प्रति कहिये कि आप उग्ररूप वाले कौन हैं। हे देवों में श्रेष्ठ आप को नमस्कार होवे, आप प्रसन्न होइये। आदि रूप आप को मैं तत्त्व से जानना चाहता हूँ क्योंकि आप की प्रवृत्ति को मैं नहीं जानता।''

अर्जुन की प्रार्थना सुन भगवान ने कहा - ''हे अर्जुन! लोकों का नाश करने वाला मैं बढ़ा हुआ काल हूँ। इस समय इन लोकों को नष्ट करने के लिए प्रवृत्त हुआ हूँ। इसलिये जो प्रतिपक्षियों की सेना में स्थित हुए योद्धा लोग हैं वे सब तेरे बिना भी नहीं रहेंगे। इस से तू खड़ा हो और यश को प्राप्त कर तथा शत्रुओं को

जीत कर धन धान्य से सम्पन्न राज्य को भोग और यह सब शूरवीर पहले से ही मेरे द्वारा मारे हुए हैं। तू केवल निमित्त मात्र ही हो जा।''

अर्जुन ने कहा - ''हे विश्वमूर्ते पहले से न देखे हुए आश्चर्यमय आप के इस रूप को देख कर मैं हर्षित हो रहा हूँ और मेरा मन भय से अति व्याकुल भी हो रहा है। इसलिए हे देव, आप उस पहले रूप को ही मेरे लिये दिखाइये। हे देवेश, हे जगन्निवास, प्रसन्न होइये। मैं वैसे ही आपको मुकुट धारण किये हुए तथा गदा और चक्र हाथ में लिए हुए देखना चाहता हूँ।''

श्री भगवान बोले - ''हे अर्जुन मैंने अपनी योग शक्ति के प्रभाव से यह अपना परम तेजोमय, सबका आदि और सीमा रहित विराट् रूप तेरे को दिखाया है जो कि तेरे सिवाय किसी से पहिले नहीं देखा गया। हे अर्जुन मनुष्य लोक में इस प्रकार विश्वरूप वाला मैं न वेद और यज्ञों के अध्ययन से तथा न दान से और न अन्य क्रियाओं से और न उग्र तपों से ही देखा जाने को शक्य हूँ।

इस प्रकार के मेरे इस विकराल रूप को देखकर तुझे व्याकुलता न होवे और मूढ़भाव भी न होवे। भय रहित अब तू उस ही मेरे (प्राकृत) रूप को फिर देख।''

भगवान ने अर्जुन के प्रति इस प्रकार कह कर फिर वैसे ही अपने प्राकृत रूप को दिखाया और भयभीत हुए अर्जुन को धीरज बंधवाया। और अर्जुन को कहा - हे अर्जुन, मेरा यह रूप अति दुर्लभ है, जिस को तुम ने देखा है।

परन्तु हे अर्जुन! जो पुरुष मेरा अनन्य भक्त है, संपूर्ण कर्मों को करने वाला है, मेरे परायण है, आसक्ति रहित है, सर्वभूत प्राणियों के प्रति वैर भाव से रहित है वह पुरुष ही मेरे को प्राप्त होता है।

श्री प्रभु जी से पण्डित ने सब वर्णन सुन कर पूछा - वह कैसी भक्ति है जिस द्वारा सर्वेश्वर भगवान भक्त पर प्रसन्न हो कर अपने विश्वरूप के दर्शन करवाते हैं। मैं उस अलौकिक भक्ति का भेद आप से जानना चाहता हूँ। आप परम योगी हैं और परम तत्त्व के ज्ञाता हैं।

श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया - हे विप्रवर, नि:संदेह भगवान को देखने, जानने और उनमें प्रवेश करने का सर्वोत्तम साधन भक्ति ही है। अगले पाठ में श्री कृष्ण भगवान उसी भक्ति के रहस्य को विस्तार पूर्वक बतलायेंगे।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'विश्वरूप दर्शन योग'
नाम - ग्यारहवां अध्याय

दोहा

विश्व रूप में प्रभु बसें,
प्रभु में विश्व रूप।
यह अनोखा दृश्य है,
विश्व में परम अनूप॥

बारहवां अध्याय

'भक्ति योग'

दो०- भक्ति भक्ति सभी कहत, 'भक्त' विरला जन होत।
भक्ति के गुण पैंतीस, 'योगी भक्त' संजोत॥

पिछले अध्याय में भगवान ने अर्जुन को उपदेश देते हुए कहा था कि जो पुरुष मेरा भक्त है, आसक्ति रहित है, सर्व भूतप्राणियों में वैरभाव से रहित है वह पुरुष मेरे को प्राप्त होता है।

इस अध्याय में अर्जुन भगवान से भक्ति विषयिक प्रश्न करते हैं कि प्रभो आपके व्यक्त (साकार) और अव्यक्त (निराकार) दो रूप हैं। इसलिए बतलायें कि जो अनन्य प्रेमी भक्तज

न आपके भजन ध्यान में लगे हुए आप सगुण रूप परमेश्वर को अति श्रेष्ठ भाव से उपासते हैं और जो अविनाशी सच्चिदानन्दघन निराकार को ही उपासते हैं उन दोनों प्रकार के भक्तों में अति उत्तम 'योगवेत्ता' कौन है।

श्री कृष्ण भगवान ने अर्जुन की जिज्ञासा श्रवण कर उत्तर दिया - हे अर्जुन! मेरे में मन को एकाग्र करके निरन्तर मेरे भजन ध्यान में लगे हुए जो भक्त जन अतिशय श्रेष्ठ श्रद्धा से युक्त हुए मुझ सगुण रूप परमेश्वर को भजते हैं वे मेरे को योगियों में अति उत्तम योगी मान्य हैं।

और जो पुरुष इन्द्रियों के समुदाय को अच्छी प्रकार वश में करके मन बुद्धि से परे सर्वव्यापी अकथनीय स्वरूप और सदा एकरस रहने वाले नित्य अचल

निराकार अविनाशी सच्चिदानन्दघन ब्रह्म का निरन्तर एकीभाव से ध्यान करते हुए उपासते हैं वे संपूर्ण भूतों के हित में रत हुए और सब में समान भाव वाले योगी भी मेरे को ही प्राप्त होते हैं।

किन्तु उन सच्चिदानन्दघन निराकार ब्रह्म में आसक्त हुए चित्त वाले पुरुषों के साधन में क्लेष अर्थात् परिश्रम विशेष है, क्योंकि देहाभिमानियों से अव्यक्त विषयक गति दुःख पूर्वक प्राप्त की जाती है।

और जो मेरे परायण हुए भक्त जन संपूर्ण कर्मों को मेरे में अर्पण करके मुझ सगुण रूप परमेश्वर को ही अनन्य ध्यान योग से निरन्तर चिन्तन करते हुए भजते हैं उन मेरे में चित्त के लगाने वाले प्रेमी भक्तों का मैं शीघ्र ही मृत्यु रूप संसार समुद्र से उद्धार करने वाला होता हूँ।

साकार भक्ति का उल्लेख श्रवण कर पण्डित ने श्री प्रभु जी से कहा - हे योगिवर, साकार भक्ति भगवान ने सरल बतलाई है। परन्तु हमें इसमें यह कठिनाई अनुभव होती है कि मन प्रभु ध्यान में कुछ ही क्षण एकाग्र हो कर विचलित हो जाता है। इस का भी कुछ आप ही उपाय बतलायें जिससे मन प्रभु ध्यान से विचलित न हो। श्री प्रभु जी ने पण्डित को बतलाया कि मन की चंचलता प्रबल है इसलिए भगवान कृष्ण ने योग साधन का इसके साथ एक और भी उपाय योगियों के लिए बतलाया है जो इस प्रकार से है। भगवान अर्जुन को कहते हैं - ''हे अर्जुन ऊपर कहे हुए अभ्यास में भी यदि तू असमर्थ है तो केवल मेरे लिए कर्म करने के ही परायण हो। इस प्रकार मेरे अर्थ में कर्मों को करता हुआ मेरी 'प्ररूप सिद्धि' को प्राप्त होगा। भगवान को स्मरण करते हुए

अपने स्वाभाविक कर्म करते रहने से मन की चंचलता कम हो जाती है और मन भगवान में लगा रहता है।''

भगवान आगे कहते हैं ''यदि इस को भी करने के लिए असमर्थ है तो कर्मों के फल को त्याग कर कर्म कर। ध्यान से कर्म फल का त्याग श्रेष्ठ है। इस से परम शान्ति की प्राप्ति होती है।''

श्री भगवान 'भक्ति योग' के अध्याय में यह भी स्पष्ट बतलाते हैं कि मुझे वही भक्त प्रिय हैं जिन के जीवन में अधः वर्णित गुण हों। भगवान के शब्दों में गीता उन गुणों को इस प्रकार वर्णित करती है। भगवान कहते हैं:-

''सब में द्वेष भाव से रहित, सब का प्रेमी, हेतु रहित दयालु, ममता से रहित, अहंकार से रहित, सुख दुःख की प्राप्ति में सम, क्षमावान, ध्यान योग में युक्त, लाभ हानि में संतुष्ट, मन और इन्द्रियों सहित शरीर को वश किए हुए, मेरे में दृढ़ निश्चय वाला, मेरे में अर्पण किए हुए मन बुद्धि वाला, मुझे वह भक्त प्रिय है।''

''जिस से कोई भी जीव उद्वेग को प्राप्त नहीं होता और जो स्वयं भी किसी जीव से उद्वेग को प्राप्त नहीं होता तथा जो हर्ष, अमर्ष, भय और उद्वेग आदि से रहित है, वह भक्त मुझे प्रिय है।''

''जो पुरुष आकांक्षा से रहित, बाहर भीतर से शुद्ध और कार्यदक्ष, पक्षपात से रहित, दुखों से छूटा हुआ, सर्व आरंभों का त्यागी मेरा भक्त मुझे प्रिय है।''

''जो कभी न हर्षित होता है, न द्वेष करता है, न शोक करता है, न कामना करता है, शुभ और अशुभ संपूर्ण कर्मों के फल का त्यागी है वह भक्तियुक्त पुरुष मुझे प्रिय है।

''और जो शत्रु मित्र में और मान अपमान में सम है, तथा सर्दी गर्मी और सुख दुख आदि में सम है, और आसक्ति से रहित है, निन्दा, स्तुति को समान समझने वाला और मननशील है, जिस किस प्रकार से भी शरीर का निर्वाह होने से सदा ही संतुष्ट है और रहने के स्थान में ममता से रहित है, वह स्थिर बुद्धि वाला भक्तिमान पुरुष मुझे प्रिय है।

और जो मत्परायण हुए, श्रद्धायुक्त पुरुष इस ऊपर कहे हुए धर्ममय अमृत को निष्काम भाव से सेवन करते हैं वे भक्त मुझे अतिशय प्रिय हैं।''

श्री कृष्ण भगवान द्वारा वर्णित भक्तों के गुणों को श्रवण कर पण्डित ने श्री प्रभु जी से प्रश्न किया - हे योगिवर, मोक्ष की प्राप्ति के लिए भक्ति के साथ ज्ञान भी आवश्यक कहा गया है, वह ज्ञान क्या होता है।

श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया - पण्डितवर आप का यह प्रश्न ठीक है। अगले अध्याय में श्री भगवान कृष्ण उसी ज्ञान का वर्णन करते हैं।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'भक्ति योग' नाम - बारहवां अध्याय

दोहा

पैंती गुण जो भक्त के,
होंय जिस में साईं।
वही भक्त कहलात है,
संशय इस में नाहीं ॥

तेरहवां अध्याय

'क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग'

दो॰- विकार सहित है देह जो, उस को 'क्षेत्र' जान।
सर्व विश्व में रम रहा, ईश्वर 'क्षेत्रज्ञ' मान॥

प्रकृति और पुरुष (आत्मा) के संयोग से सृष्टि का निर्माण हुआ है। प्रकृति का दूसरा नाम 'क्षेत्र' है और पुरुष (आत्मा) का 'क्षेत्रज्ञ'। प्रकृति की जानकारी को 'विज्ञान' कहते हैं और आत्मा की जानकारी को 'ज्ञान'। योगी के लिए विज्ञान और ज्ञान दोनों का बोध आवश्यक है। वह बोध भगवान कृष्ण के शब्दों में प्रस्तुत अध्याय 'क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग' में मिलता है।

भगवान अर्जुन को कहते हैं - ''हे अर्जुन! यह शरीर 'क्षेत्र' है ऐसे कहा जाता है और इस को जो जानता है उस को 'क्षेत्रज्ञ' ऐसा ज्ञानीजन कहते हैं।

''हे अर्जुन तू सब क्षेत्रों में 'क्षेत्रज्ञ' मुझे ही जान। 'क्षेत्र, क्षेत्रज्ञ' को (अर्थात् विकार सहित प्रकृति को और पुरुष को) जो तत्त्व से जानना है वह 'ज्ञान' है।

क्षेत्र

''वह 'क्षेत्र' जो है और जैसा है तथा जिन विकारों वाला है और जिस कारण से जो हुआ है तथा वह ''क्षेत्रज्ञ'' जो है और जिस प्रभाव वाला है वह सब संक्षेप से मेरे से सुन।

ऋषियों द्वारा बहुत प्रकार से कहा गया है अर्थात् समझाया गया है और नाना प्रकार के वेदमन्त्रों से विभाग पूर्वक कहा गया है, तथा अच्छी प्रकार निश्चय किये हुए युक्ति युक्त ब्रह्मसूत्र के पदों द्वारा भी वह ही कहा गया है। वही मैं तेरे लिए कहता हूँ।

पांच महाभूत 'अहंकार', 'बुद्धि', 'मूल प्रकृति', तथा 'दस इन्द्रियां', 'एक मन' और 'पांच इन्द्रियों के विषय' (शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध) 'इच्छा', 'द्वेष', 'सुख', 'दुख', 'स्थूल देह', 'चेतना', 'धृति' यह 'क्षेत्र' विकारों सहित संक्षेप से कहा गया है।''

ज्ञान

आगे भगवान कृष्ण बतलाते हैं 'ज्ञान' क्या है। उन के शब्दों में नीचे लिखे गुण जिस में हों वह ज्ञानी है और जिस में ये न हों अथवा इन से विपरीत हों वह अज्ञानी है। वे गुण इस प्रकार से हैं-

श्रेष्ठता के अभिमान का अभाव, दम्भाचरण का अभाव, प्राणीमात्र को किसी प्रकार भी न सताना, क्षमा भाव, मन वाणी की सरलता, श्रद्धाभक्ति सहित गुरु की सेवा, बाहर भीतर की शुद्धि, अन्तःकरण की स्थिरता, मन और इन्द्रियों सहित शरीर का निग्रह, इस लोक और परलोक के संपूर्ण भोगों में आसक्ति का अभाव, अहंकार का भी अभाव, जन्म मृत्यु, जरा रोग आदि में दुख दोषों का बारम्बार विचार करना, स्त्री पुत्र घर और धनादि में आसक्ति का अभाव और ममता का न होना, प्रिय अप्रिय की प्राप्ति में सदा ही चित्त का सम रहना, मुझ परमेश्वर में एकीभाव से स्थिति रूप ध्यान योग के द्वारा अव्यभिचारणी भक्ति, एकांत और शुद्ध देश में रहने का स्वभाव, विषयासक्त मनुष्यों के

समुदाय में प्रेम न होना, अध्यात्म ज्ञान में नित्य स्थिति, तत्त्व ज्ञान के अर्थरूप परमात्मा को सर्वत्र देखना।

इस प्रकार ज्ञानी पुरुषों के गुणों का वर्णन कर भगवान आगे कहते हैं कि ज्ञानियों के लिए जानने योग्य क्या है जिसे जान कर मनुष्य परमानन्द को प्राप्त होता है।

ब्रह्म

भगवान कहते हैं कि जानने योग्य केवल 'ब्रह्म' है। वह मैं अच्छी प्रकार बतलाऊँगा। भगवान के शब्दों में वह 'ब्रह्म' आदि रहित है। न 'सत्' कहा जाता है और न 'असत्' ही कहा जाता है।

वह सब ओर से हाथ पैर वाला है। सब ओर से नेत्र और मुख वाला है तथा सब ओर से श्रोत्र वाला है। क्योंकि वह संसार में सब को व्याप्त कर के स्थित है।

संपूर्ण इन्द्रियों के विषयों को जानने वाला है परन्तु वास्तव में सब इन्द्रियों से रहित है तथा आसक्ति रहित है और गुणों से अतीत हुआ भी अपनी योगमाया से सब को धारण पोषण करने वाला और गुणों को भोगने वाला है।

चराचर सब भूतों के बाहर भीतर परिपूर्ण है। और चर अचर रूप भी वही है और वह सूक्ष्म होने से अविज्ञेय है तथा अति समीप में और दूर भी स्थित वही है।

वह ब्रह्म विभाग रहित एक रूप से आकाश के सदृश परिपूर्ण हुआ भी चराचर संपूर्ण भूतों में पृथक पृथक के सदृश स्थित प्रतीत होता है। तथा वह

जानने योग्य परमात्मा विष्णु रूप से भूतों को धारण पोषण करने वाला और रूद्ररूप से संहार करने वाला तथा ब्रह्मा रूप से सब का उत्पन्न करने वाला है।

वह ब्रह्म ज्योतियों की भी ज्योति एवं माया से अति परे कहा जाता है। वह बोध स्वरूप और जानने के योग्य है एवं तत्त्व ज्ञान से प्राप्त होने वाला है। वह सबके हृदय में स्थित है।

भगवान कृष्ण अर्जुन को कहते हैं कि मैंने संक्षेप से 'क्षेत्र' 'क्षेत्रज्ञ' तथा 'ज्ञान' और 'ब्रह्म' का वर्णन तेरे लिए किया। जो मेरा भक्त इस को भली प्रकार से समझता है वह मुझे प्राप्त होता है।

क्षेत्रज्ञ पुरुष (आत्मा)

अब भगवान क्षेत्रज्ञ (आत्मा) के विषय में फिर समझाते हैं।

भगवान कहते हैं - हे अर्जुन प्रकृति और पुरुष (क्षेत्रज्ञ) इन दोनों को ही तू अनादि जान और विकारों को तथा गुणों को प्रकृति से उत्पन्न हुआ जान।

कार्य और करण की हेतु प्रकृति कही जाती है। और पुरुष सुख दुख के भोक्तापन में हेतु कहा जाता है। प्रकृति में स्थित हुआ ही पुरुष प्रकृति से उत्पन्न हुए सब पदार्थों के गुणों को भोगता है। और इन गुणों का संग ही जीवात्मा के अच्छी बुरी योनियों में जन्म लेने में कारण है।

वास्तव में तो जीवात्मा इस देह में स्थित हुआ भी मायातीत है, साक्षी होने से उपद्रष्टा है और सम्मति देने से अनुमन्ता है। सब के धारण करने वाला होने से भर्ता है, जीवरूप से भोक्ता है और सब का स्वामी भी है। और शुद्ध सच्चिदानन्दघन होने से परमात्मा भी कहा गया है।

भगवान कहते हैं कि इस प्रकार गुणों सहित प्रकृति और पुरुष को जो मनुष्य तत्व से जानता है वह पुनर्जन्म को नहीं प्राप्त होता।

आत्म दर्शन

भगवान कहते हैं कि उस आत्मा को भिन्न-भिन्न जन भिन्न-भिन्न उपायों से देखते हैं। कितने ही मनुष्य शुद्ध हुई सूक्ष्म बुद्धि से ध्यान के द्वारा हृदय में देखते हैं तथा अन्य कितने ही ज्ञान योग के द्वारा देखते हैं और कितने ही निष्काम कर्म योग के द्वारा देखते हैं। परन्तु इन से दूसरे इस प्रकार न जानते हुए दूसरों से सुन कर ही उपासना करते हैं और वे सुनने के परायण हुए पुरुष भी मृत्यु रूप संसार सागर को तर जाते हैं।

उपसंहार

इस अध्याय के अन्त में भगवान कृष्ण यही कहते हैं कि हे अर्जुन जो कुछ भी स्थावर जंगम वस्तु उत्पन्न होती है उस संपूर्ण को तू 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ' के संयोग से ही उत्पन्न हुई जान। इस प्रकार जान कर जो पुरुष नष्ट होते हुए सब चराचर भूतों में नाश रहित परमेश्वर को समभाव से स्थित देखता है, वही देखता है।

वह पुरुष समभाव से स्थित हुए परमेश्वर को समान स्थित देखता हुआ अपने द्वारा आप को नष्ट नहीं करता है अर्थात् अपने को अविनाशी जानता है। इस से वह परम गति को प्राप्त होता है।

जो पुरुष संपूर्ण कर्मों को सब प्रकार से प्रकृति से ही किए हुए देखता है तथा आत्मा को अकर्ता देखता है, वही देखता है।

जिस अवस्था में भूतों के न्यारे-न्यारे भाव को एक परमात्मा के आधार स्थित देखता है, तथा उस परमात्मा से ही संपूर्ण भूतों का विस्तार देखता है उस

अवस्था में वह सच्चिदानन्दघन ब्रह्म को प्राप्त होता है।

भगवान कहते हैं हे अर्जुन अनादि होने से और गुणातीत होने से यह अविनाशी परमात्मा शरीर में स्थित हुआ भी वास्तव में न करता है और न लिपायमान होता है।

जिस प्रकार सर्वत्र व्याप्त हुआ भी आकाश सूक्ष्म होने के कारण लिपायमान नहीं होता है वैसे ही सर्वत्र देह में स्थित हुआ भी आत्मा लिपायमान नहीं होता है।

हे अर्जुन, जिस प्रकार एक ही सूर्य इस संपूर्ण ब्रह्माण्ड को प्रकाशित करता है उसी प्रकार एक ही आत्मा संपूर्ण 'क्षेत्र' को प्रकाशित करता है।

हे अर्जुन! इस प्रकार 'क्षेत्र' और 'क्षेत्रज्ञ' के भेद को तथा प्रकृति से छूटने के उपाय को ज्ञान नेत्रों द्वारा तत्त्व से जो पुरुष जानते हैं वे परब्रह्म परमात्मा को प्राप्त होते हैं।

श्री प्रभु जी के मुखारविंद से ''क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग'' का ज्ञान श्रवण कर पण्डित ने कहा हे योगिवर प्रकृति त्रयगुणात्मक बतलाई और उन्हीं तीन गुणों के कारण अविनाशी आत्मा अच्छी बुरी योनियों में बंध जाता है। उन तीन गुणों को विस्तारपूर्वक मैं आप से सुनना चाहता हूँ।

श्री प्रभु जी ने कहा हे विप्रवर उन्हीं तीन गुणों का विस्तार ही हम अगले पाठ में श्री भगवान कृष्ण के शब्दों में पढ़ेंगे।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'क्षेत्र क्षेत्रज्ञ विभाग योग'

नाम - तेरहवां अध्याय

दोहा

क्षेत्रज्ञ व क्षेत्र का, ज्ञान अनुपम मीत।
देह, पुरुष व ब्रह्म का, यह ज्ञान लो चीत॥

चौदहवां अध्याय

'गुण त्रय विभाग योग'

दो०- प्रकृति के 'गुण तीन' हैं, सत्त्व रजस तम मीत।
ईश्वर 'त्रिगुणातीत' है, ज्ञानियों को प्रतीत॥

तीन गुण और उनके कर्म

इस अध्याय में भगवान कृष्ण प्रकृति के तीन गुणों के विषय में बतलाते हुए कहते हैं - हे अर्जुन सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण ये प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। वे तीनों गुण अविनाशी जीवात्मा को शरीर में बांधते हैं।

उन तीनों गुणों में प्रकाश करने वाला निर्विकार 'सत्त्वगुण' निर्मल होने के कारण सुख की आसक्ति से और ज्ञान की आसक्ति से जीव को बांधता है।

हे अर्जुन! राग रूप 'रजोगुण' को कामना और आसक्ति से उत्पन्न हुआ जान। वह इस जीवात्मा को कर्मों और उन के फल की आसक्ति से बांधता है।

हे अर्जुन! सर्वदेहाभिमानियों के मोहने वाले 'तमोगुण' को अज्ञान से उत्पन्न हुआ जान। वह प्रमाद, आलस्य और निद्रा के द्वारा जीव को बांधता है।

हे अर्जुन! रजोगुण और तमोगुण को दबाकर सत्त्वगुण होता है अर्थात् बढ़ता है। तथा रजोगुण और सत्त्वगुण को दबाकर तमोगुण बढ़ता है। वैसे ही तमोगुण और सत्त्वगुण को दबाकर रजोगुण बढ़ता है।

जिस काल में इस देह में तथा अन्तः करण और इन्द्रियों में चेतना और बोध शक्ति उत्पन्न होती है उस काल में ऐसा जानना चाहिए कि 'सत्त्वगुण' बढ़ा है।

हे अर्जुन! 'रजोगुण' के बढ़ने पर लोभ और सांसारिक चेष्टा तथा सब प्रकार के कर्मों का आरम्भ एवं अशांति और विषय भोगों की लालसा यह सब उत्पन्न होते हैं।

हे अर्जुन! 'तमोगुण' के बढ़ने पर अन्तः करण और इन्द्रियों में अप्रकाश एवं कर्तव्यों में अप्रवृत्ति और प्रमाद और अन्तः करण की मोहिनी वृत्तियां यह सब ही उत्पन्न होते हैं।

तीन गुणों का जीवात्मा पर प्रभाव

जब यह जीवात्मा सत्त्व गुण की बृद्धि में मृत्यु को प्राप्त होता है तब तो उत्तम कर्म करने वालों के मलरहित (अर्थात् दिव्य) स्वर्गादि लोकों को प्राप्त होता है।

रजोगुण के बढ़ने पर मृत्यु को प्राप्त होकर जीव कर्मों की आसक्ति वाले मनुष्यों में उत्पन्न होता है। तमोगुण के बढ़ने पर मरा हुआ पुरुष कीट-पशु आदि मूढ़ योनियों में उत्पन्न होता है।

सात्त्विक कर्म का तो सात्त्विक अर्थात् सुख ज्ञान और वैराग्य आदि निर्मल फल कहे हैं। राजस कर्म का फल दुख। तामस कर्म का फल अज्ञान कहा है। सत्त्वगुण से ज्ञान उत्पन्न होता है और रजोगुण से निःसंदेह लोभ तथा तमोगुण से प्रमाद और मोह उत्पन्न होते हैं और अज्ञान भी होता है।

सत्त्वगुण में स्थित हुए पुरुष स्वर्गादि उच्च लोकों को जाते हैं। रजोगुण में स्थित राजस पुरुष मध्य अर्थात् मनुष्य लोक में ही रहते हैं। तमोगुण के कार्य निद्रा, प्रमाद और आलस्य आदि में स्थित हुए तामस पुरुष अधोगति को अर्थात् कीट, पशु आदि नीच योनियों को प्राप्त होते हैं।

त्रिगुणातीत होने के उपाय और फल

भगवान कहते हैं, हे अर्जुन! जिस काल में द्रष्टा तीनों गुणों के सिवाय अन्य किसी को कर्ता नहीं देखता है अर्थात् गुण गुणों में वर्तते हैं ऐसा देखता है और तीनों गुणों के अति परे सच्चिदानन्दघन स्वरूप परमात्मा को तत्त्व से जानता है उस काल में वह पुरुष मेरे स्वरूप को प्राप्त होता है तथा वह पुरुष इन स्थूल शरीर की उत्पत्ति का कारण रूप तीनों गुणों को उल्लंघन करके जन्म, मृत्यु, वृद्धावस्था और सब प्रकार के दुखों से मुक्त हुआ 'परमानन्द' को प्राप्त होता है।

हे अर्जुन, जो पुरुष सत्त्व गुण के कार्य रूप प्रकाश को और रजोगुण के कार्यरूप प्रवृत्ति को तथा तमोगुण के कार्यरूप मोह के प्रवृत्त होने पर उन्हें बुरा समझता है और न निवृत्त होने पर उन की आकांक्षा करता है तथा जो साक्षी के सदृश स्थित हुआ गुणों के द्वारा विचलित नहीं होता है और गुण ही गुणों में बर्तते हैं ऐसा समझता है वह 'त्रिगुणातीत' है।

हे अर्जुन, जो पुरुष निरन्तर आत्मभाव में स्थित हुआ दुख सुख को समान समझने वाला है, तथा मिट्टी पत्थर और सुवर्ण में समान भाव वाला है और धैर्यवान है तथा जो प्रिय और अप्रिय को बराबर समझता है, और जो अपनी निन्दा स्तुति में भी समान भाव वाला है तथा मान और अपमान में सम है, एवं

मित्र और वैरी के पक्ष में भी सम है वह पुरुष 'गुणातीत' कहा जाता है।

हे अर्जुन, जो पुरुष अव्यभिचारी भक्ति रूप योग के द्वारा मेरे को निरन्तर भजता है वह इन तीनों गुणों को अच्छी प्रकार उल्लंघन करके सच्चिदानन्दघन 'ब्रह्म में एकीभाव' होने के लिए योग्य होता है।

फिर इस अध्याय के अन्त में श्री भगवान अर्जुन को कहते हैं कि हे अर्जुन अविनाशी परब्रह्म का और अमृत का तथा नित्य धर्म का और अखण्ड एकरस आनन्द का मैं ही आश्रय हूँ।

श्री प्रभु जी के मुखारविन्द से पण्डित ने तीन गुणों का स्वरूप, त्रिगुणातीत होने की क्रिया और त्रिगुणातीत होने का फल जो कि जीव को ब्रह्म के साथ मिला देता है, एकाग्र मन से श्रवण किया। और श्री प्रभु जी से पण्डित ने प्रश्न किया कि त्रिगुणातीत पुरुष ब्रह्म में लीन होने के योग्य हो जाता है ऐसा मैंने आप से श्रवण किया। परन्तु मैं यह आपसे जानना चाहता हूँ कि उस ब्रह्म का जिस में जीव लीन होता है, स्वरूप क्या है। कृपया यह समझायें।

श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया कि अगले अध्याय में 'ब्रह्म विद्या' के विषय में श्री कृष्ण भगवान के शब्दों को पढ़ेंगे।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'गुणत्रय विभाग योग'
नाम - चौदहवां अध्याय

दोहा
प्रकृति के गुण तीन जो,
सत्व, रज, और तम।
सभी गुणों का वर्णन,
देख लिया सक्रम ॥

पंदरहवां अध्याय

'पुरुषोत्तम योग'

दो०- देह में जीव जो बसत, 'पुरुष' वह कहलाय।
'पुरुषोत्तम' परमात्मा, कण कण में रम पाय॥

श्री प्रभु जी ने पण्डित को कहा हे विप्रवर आप ने 'ब्रह्म' के विषय में प्रश्न किया था। संक्षेप में आप यूं समझो कि अव्यक्त ब्रह्म असीम है और अपने तीन स्वरूपों में सर्वत्र व्यापक है। एक तो 'जीव रूप' में जिसे 'पुरुष' का नाम दिया गया है, दूसरा 'पुरुषोत्तम' रूप में जिसे कोई परमात्मा और कोई 'ईश्वर' कहते हैं, और तीसरा अखण्ड मण्डलाकार 'ब्रह्म' के रूप में है। यह सुन पण्डित ने कहा - हे योगिवर आपने बहुत सरल ढंग से मेरी भ्रांति का निवारण किया। कृपा कर इसे विस्तार से समझायें।

श्री प्रभु जी ने कहा 'पुरुष' शब्द गीता के अनुसार वह सत्ता है जो भगवान कृष्ण के शब्दों में ''ममेव अंशो जीव भूतः सनातनः'' है, अर्थात् जीव मेरा सनातन अंश है। इस प्रकार से ''पुरुष'' असंख्य हैं जिन से विश्व सृष्टि कायम है। 'पुरुष' त्रयगुणों के संपर्क से इस विश्व में कार्यरत है। ब्रह्म का दूसरा रूप 'पुरुषोत्तम' है जो पुरुष से भिन्न इस रूप में है कि वह त्रिगुणी माया से अछूता है। योग दर्शन में उसके बारे में लिखा है-

[1]''क्लेशकर्म विपाकाशयैरपरामष्टः पुरुष विशेष ईश्वर।''

[2]'पुरुषोत्तम' अनन्त संख्या में हो सकते हैं। वे भिन्न कालों में भिन्न लोकों में सृष्टि के निर्माण, पालन और संहार के कार्यों में रत हैं।

[3]ब्रह्म निराकार, कण-कण में समाया हुआ, असीम शक्तिरूप और सीमा रहित है।

हे पण्डितवर! इस अध्याय के आरंभ में ईश्वर की रची सृष्टि का जो स्वरूप दिया है। वह इस प्रकार से है :-

सृष्टि का स्वरूप

ऊपर की ओर जड़ों वाले और नीचे की ओर शाखाओं वाले अश्वत्थ को (पीपल वृक्ष रूपी संसार) ईश्वर ने बनाया है। वेदों के छंद ही इस वृक्ष के पत्ते हैं। जो इस सृष्टि के रहस्य को जानता है वही ज्ञानी है।

इस (वृक्ष) की शाखायें ऊपर नीचे (चारों ओर) फैली हुई हैं। त्रयगुणों से उन का विस्तार होता है। विषय उस की कोंपलें हैं। उस की जड़ें ऊपर नीचे दृढ़ता पूर्वक फैली हैं।

इस संसार का रूप भली प्रकार से विदित नहीं होता। इस का न अन्त और न आदि प्रतीत होता है और न ही इस की स्थिति। दृढ़ मूल वाले इस संसार रूपी

---

1. योग दर्शन - समाधि पाद सूत्र 24
   क्लेश, कर्म, कर्मों के फल और वासनाओं से असम्बद्ध, अन्य पुरुषों से विशेष (विभिन्न) ईश्वर है।
2. गीता - देखें गीता 7.4-6, 10.20, 11.28-30
3. गीता - देखें गीता 13.32-33

वृक्ष को दृढ़ वैराग्य रूपी शस्त्र से ही काटा जा सकता है।

सृष्टि चक्र से मुक्ति

भगवान कहते हैं कि नष्ट हो गया है मान और मोह जिन का तथा जीत लिया है आसक्ति रूप दोष जिन ने और आत्म स्वरूप में निरन्तर स्थिति है जिनकी और अच्छी प्रकार से नष्ट हो गई है कामना जिन की, ऐसे वे सुख दुख द्वन्द्वों से विमुक्त हुए ज्ञानी जन ही उस अविनाशी परमपद को प्राप्त होते हैं।

पुरुष

संसार में जो जो जीव हैं उन के विषय में भगवान बतलाते हैं कि इस देह में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और वही इन त्रिगुणमयी माया में स्थित हुई मन सहित पांचों इन्द्रियों को आकर्षण करता है।

वायु गन्ध के स्थान से गंध को जैसे ग्रहण कर के ले जाता है, वैसे ही देह का स्वामी जीवात्मा जिस पहले शरीर को त्यागता है उस से इन मन सहित इन्द्रियों को ग्रहण करके साथ ले जाता है।

यह जीवात्मा श्रोत्र, चक्षु और त्वचा को तथा रसना घ्राण और मन को आश्रय करके अर्थात् इन के सहारे से ही विषयों का सेवन करता है।

अज्ञानी जन शरीर छोड़कर जाते हुए अपने शरीर में स्थित हुए और विषयों को भोगने वाले आत्म स्वरूप को नहीं जानते हैं। केवल ज्ञान रूप नेत्रों वाले ज्ञानी जन ही तत्त्व से आत्मा को जानते हैं।

परन्तु योगीजन भी अपने हृदय में स्थित हुए इस आत्मा को यत्न करते हुए

ही तत्त्व से जानते हैं। जिन्होंने अपने अन्तःकरण को शुद्ध नहीं किया है ऐसे अज्ञानी जन तो यत्न करते हुए भी इस आत्मा को नहीं जानते हैं।

पुरुषोत्तम

भगवान श्री कृष्ण पुरुषोत्तम विषयिक उपदेश देते हुए कहते हैं - हे अर्जुन, जो तेज सूर्य में स्थित हुआ संपूर्ण जगत को प्रकाशित करता है तथा जो तेज चन्द्रमा में स्थित है और जो तेज अग्नि में स्थित है उस को तू मेरा ही तेज जान।

मैं ही पृथ्वी में प्रवेश करके अपनी शक्ति से सब भूतों को धारण करता हूँ और रस रूप अर्थात् अमृत मय चन्द्रमा हो कर संपूर्ण औषधियों अर्थात् वनस्पतियों को पुष्ट करता हूँ।

मैं ही सब प्राणियों के शरीर में स्थित हुआ वैश्वानर अग्नि रूप होकर प्राण और अपान से युक्त हुआ चार प्रकार के अन्न को (चबा कर खाने वाला, पीने वाला, चाटने वाला, चूसने वाला) पचाता हूँ और मैं ही सब प्राणियों के हृदय में स्थित हूँ, तथा मेरे से ही स्मृति, ज्ञान और अपोहन (संशय निवृत्ति) होता है और सब वेदों द्वारा मैं ही जानने के योग्य हूँ तथा वेदान्त कर्ता और वेदों को जानने वाला भी मैं ही हूँ।

हे अर्जुन! नाशवान और अविनाशी (शरीर और जीव आत्मा) उन दोनों से उत्तम पुरुष जो अन्य है, और जो तीनों लोकों में प्रवेश करके सब का धारण पोषण करता है, एवं अविनाशी, परमेश्वर और परमात्मा ऐसा कहा गया है मैं ही हूँ।

मैं 'क्षर' (नाशवान जड़ वर्ग) से अतीत हूँ और 'अक्षर' (जीवात्मा) से भी उत्तम हूँ। इस लिए लोक में और वेद में भी 'पुरुषोत्तम' नाम से प्रसिद्ध हूँ।

हे भरत! इस प्रकार तत्त्व से जो ज्ञानी पुरुष मेरे को 'पुरुषोत्तम' जानता है वह सर्वज्ञ पुरुष सब प्रकार से निरन्तर मुझ परमेश्वर को ही भजता है।

श्री प्रभु जी से पण्डित ने 'पुरुष' 'पुरुषोत्तम' और 'ब्रह्म' की विशद विवेचना श्रवण कर कहा कि हे योगिवर, मेरी कई भ्रांतियां दूर हो गई हैं। इस अध्याय में एक बात जो भगवान ने कही है कि कई योगीजन भी इसे जानने में असमर्थ होते हैं उसका क्या कारण है ?

श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया कि इसका उत्तर भी आप को अगले पाठ में मिल जाएगा।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'पुरुषोत्तम योग'

नाम - पंदरहवां अध्याय

दोहा

पुरुषोत्तम हि परमात्मा,
जो अवतार कहाय।
कृष्ण चन्द्र के रूप में,
रामलाल वा आय ॥

सोलहवां अध्याय

'दैवासुरसंपद् विभाग योग'

दो०- 'देवों' की जो संपदा, पुण्य कर्म लो जान।
'असुरों' की जो संपदा, पाप कर्म पहचान॥

इस अध्याय में भगवान कृष्ण बतलाते हैं कि योगी की पहचान गुणों से होती है जिन गुणों के आधार पर वह योगी परमेश्वर अथवा ब्रह्म को प्राप्त कर सकता है। उन गुणों को भगवान ने संपद् (संपत्ति) का नाम दिया है क्योंकि योगी की संपत्ति या पूंजी गुण ही हैं। योगियों के पास जो संपद् होती है उसे 'दैवी संपद्' या 'दैवी गुण' कहा गया है। और उन गुणों से भिन्न जो हैं वे 'आसुरी संपद्' या 'आसुरी कर्म' कहलाते हैं। इस प्रकार गुणों के आधार पर देव अथवा असुर की पहचान भी हो सकती है। 'दैवी संपद्' क्या है, और 'आसुरी संपद्' क्या है। इन दोनों का विस्तार पूर्वक वर्णन इस अध्याय में है।

दैवी कर्म

भगवान कहते हैं, ''हे अर्जुन! दैवी संपद् यह है - सर्वथा भय का अभाव, अन्तः करण की अच्छी प्रकार से स्वच्छता, तत्त्व ज्ञान के लिए ध्यान योग में निरन्तर दृढ़ स्थिति, सात्त्विक दान, इन्द्रियों का दमन, भगवत् पूजा और अग्निहोत्रादि उत्तम कर्मों का आचरण, वेद शास्त्रों के पठन पाठन पूर्वक भगवत् के नाम और गुणों का कीर्तन (स्वाध्याय) , स्वधर्म पालन के लिए कष्ट सहन भी

करना (तप) , शरीर और इन्द्रियों के सहित अन्तःकरण की सरलता (आर्जव), मन वाणी और शरीर से किसी प्रकार भी किसी को कष्ट न देना (अहिंसा), यथार्थ और प्रिय भाषण (सत्य), अपना अपकार करने वाले पर भी क्रोध का न होना (अक्रोध), कर्मों में कर्तापन के अभिमान का त्याग (त्याग), अन्तःकरण की उपरामता अर्थात् चित्त की चंचलता का अभाव (शांति), किसी की भी निन्दा आदि न करना (अपैशुन), सब प्राणियों में हेतु रहित दया (दया भूतेषु), इन्द्रियों का विषयों के साथ संयोग होने पर भी आसक्ति का न होना (अलोलुप्त्व), कोमलता (मार्दव), लोक और शास्त्र से विरुद्ध आचरण में लज्जा (ह्री), व्यर्थ चेष्टाओं का अभाव (अचापलता), तेज, क्षमा, धैर्य और बाहर भीतर की शुद्धि (शौच), किसी में भी शत्रु भाव का न होना (अद्रोह), अपने में पूज्यता के अभिमान का अभाव (न अतिमानिता)।''

इसके पश्चात् भगवान कृष्ण उस संपद् का बखान भी करते हैं जो असुरों के पास है। भगवान के शब्दों में पाखण्ड (दम्भ), घमण्ड (दर्प), अभिमान, क्रोध, कठोर वाणी (पारुष्यता), अज्ञान ये सब आसुरी संपदा को प्राप्त हुए पुरुष के लक्षण हैं।

भगवान अर्जुन को बतलाते हैं कि दैवी संपदा तो मुक्ति के लिए है और आसुरी संपदा बंधन के लिए मानी गई है। अर्जुन को आश्वस्त करते हैं कि हे अर्जुन शोक मत कर क्योंकि तू दैवी संपदा को प्राप्त हुआ है।

''हे अर्जुन! इस लोक में भूतों के स्वभाव दो प्रकार के माने गये हैं। एक तो देवों के जैसा और दूसरा असुरों के जैसा। उन में देवों का स्वभाव विस्तार पूर्वक

हम ने पहले बतला दिया है। अब असुरों के स्वभाव को भी विस्तार पूर्वक मेरे से सुनो।'' यह कहकर भगवान ने अर्जुन को असुरों का स्वभाव विस्तार पूर्वक बतलाया।

आसुरी स्वभाव और कर्म

आसुरी स्वभाव वाले मनुष्य कर्त्तव्य कार्य में प्रवृत्त होने को और अकर्त्तव्य कार्य से निवृत्त होने को भी नहीं जानते हैं (प्रवृत्ति, निवृत्ति न विदुः), बाहर भीतरी शुद्धि नहीं, श्रेष्ठ आचार नहीं, सत्य भाषण नहीं, जगत आश्रय रहित है (अप्रतिष्ठ), सर्वथा असत्य है, बिना ईश्वर के है, अपने आप स्त्री पुरुष के संयोग से उत्पन्न हुआ है। केवल भोगों के लिए ही है वे ऐसा मानते हैं। वे सब का अपकार करने वाले हैं (अहिताः), क्रूर कर्मी (उग्र कर्मा), जग का नाश करने वाले, दम्भ, मान और मद से युक्त हो कर किसी प्रकार भी न पूर्ण होने वाली कामनाओं का आसरा लेकर अज्ञान से मिथ्या सिद्धान्तों को ग्रहण कर भ्रष्ट आचार युक्त हैं। मरण पर्यन्त रहने वाली अनन्त चिन्ताओं को आश्रय किये हुए और विषय भोगों में तत्पर हुए एवं इतना मात्र ही आनन्द है ऐसा मानने वाले हैं। आशारूपी सैंकड़ों फांसियों से बंधे हुए और काम क्रोध के परायण विषय भोगों की पूर्ति के लिए धनादिक बहुत से पदार्थों को संग्रह करने की चेष्टा करते हैं। मैंने आज यह तो पाया है और अब इस मनोरथ को प्राप्त होऊँगा। मेरे पास यह धन है और फिर भी यह होगा, वह शत्रु मेरे द्वारा मारा गया है, और दूसरे शत्रुओं को भी मैं मारूंगा, मैं ईश्वर और ऐश्वर्य को भोगने वाला हूँ, मैं सब सिद्धियों से युक्त और बलवान तथा सुखी हूँ।

मैं बड़ा धनवान और बड़े कुटुम्ब वाला हूँ। मेरे समान दूसरा कौन है। मैं यज्ञ

करूंगा, दान दूंगा, हर्ष को प्राप्त होऊँगा। वे इस प्रकार के अज्ञान से मोहित हैं।

अनेक प्रकार से भ्रमित हुए चित्त वाले अज्ञानी जन मोह रूप जाल में फंसे हुए एवं विषय भोगों में अत्यंत आसक्त हुए महान अपवित्र नरक में गिरते हैं। वे अपने आप को ही श्रेष्ठ मानने वाले घमण्डी पुरुष धन और मान के मद से युक्त हुए शास्त्र विधि से रहित, केवल नाम मात्र के यज्ञों द्वारा पाखण्ड से यजन करते हैं।

वे अहंकार, बल, घमंड करना और क्रोध आदि के परायण हुए एवं दूसरों की निन्दा करने वाले पुरुष अपने और दूसरों के शरीर में स्थित ईश्वर से द्वेष करने वाले हैं। उन द्वेष करने वाले पापाचारी और क्रूरकर्मी नराधमी को मैं संसार में बारम्बार आसुरी योनियों में ही गिराता हूँ।''

भगवान कहते हैं, ''हे अर्जुन! वे मूढ़ पुरुष जन्म जन्म में आसुरी योनि को प्राप्त हुए मेरे को न प्राप्त हो कर उस में भी अति नीच गति को ही प्राप्त होते हैं। अर्थात् घोर नरक में पड़ते हैं।''

उपसंहार

इस अध्याय के अन्त में भगवान कृष्ण उपदेश देते हैं, ''हे अर्जुन! 'काम' 'क्रोध' तथा 'लोभ' ये तीन नरक के द्वार हैं। आत्मा का नाश करने वाले हैं। इस लिए इन तीनों को त्याग देना चाहिए।

हे अर्जुन! इन तीनों नरक के द्वारों से मुक्त हुआ पुरुष अपने कल्याण का आचरण करता है। इस से वह परम गति को जाता है अर्थात् मेरे को प्राप्त होता है।

और जो पुरुष शास्त्र की विधि को त्याग कर अपनी इच्छा से वर्तता है वह न तो सिद्धि को प्राप्त होता है और न परम गति को तथा न सुख को ही प्राप्त होता है।

हे अर्जुन! इस से तेरे लिए इस कर्तव्य और अकर्तव्य की व्यवस्था में शास्त्र ही प्रमाण है ऐसा जानकर तू शास्त्र विधि से नियत किए हुए कर्म को ही करने के लिए योग्य है।

श्री प्रभु जी के मुखारविंद से पण्डित ने दैवी कर्म और आसुरी कर्मों की विवेचना श्रवण कर और अन्त में भगवान का निर्णय कि शास्त्रानुसार कर्म करने चाहिए सुन कर श्री प्रभु जी से प्रश्न किया, ''हे योगिवर! मैंने काशी में रहकर शास्त्रों का अध्ययन किया है और शास्त्रों में भी परस्पर मतभेद पाया है उस दशा में कर्म करने में पुरुष को भ्रांति हो जाती है इस में आप क्या कहेंगे।'' पण्डित का युक्ति पूर्ण विचार सुन श्री प्रभु जी ने उत्तर दिया। यही बात अर्जुन के मन में भी आई और उसका उत्तर स्वयं भगवान ने अगले अध्याय में दिया है।

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'दैवासुरसंपद् विभाग योग'
नाम - सोलहवां अध्याय

दोहा

देवों में गुण बहुत हैं,
असुरों में हैं दोष।
स्वभाव से वे भिन्न हैं,
स्वभाव उन के कोष॥

सत्रहवां अध्याय

'श्रद्धात्रय विभाग योग'

दो०- श्रद्धा तीन प्रकार की, सात्त्विक राजस जान।
तामस श्रद्धा तीसरी, करावे पाप महान॥

पिछले अध्याय में भगवान कृष्ण ने अर्जुन को शिक्षा दी थी कि वह सब कर्म शास्त्र की शिक्षा के अनुसार करे। उस प्रसंग में अर्जुन का प्रश्न है, "हे कृष्ण! यदि शास्त्र का पूर्ण ज्ञान न हो और व्यक्ति श्रद्धा पूर्वक कोई कर्म करता है तो उस का उसे फल क्या होगा।" इस के उत्तर में भगवान कृष्ण श्रद्धा की परिभाषा देते हुए कहते हैं, "हे अर्जुन मनुष्यों की वह स्वभाव से उत्पन्न हुई श्रद्धा सात्विकी, राजसी तथा तामसी ऐसे तीन प्रकार की ही होती है। उस को तू मेरे से सुन।

"हे भारत! सभी मनुष्यों की श्रद्धा उन के अन्तःकरण अनुरूप होती है, इसलिए जो पुरुष जैसी श्रद्धा वाला है वह स्वयं भी वही है।

उन में सात्त्विक पुरुष तो देवों को पूजते हैं। और राजस पुरुष यक्ष और राक्षसों को पूजते हैं, तथा अन्य जो तामस मनुष्य हैं वे प्रेत और भूतगणों को पूजते हैं।"

भगवान आगे कहते हैं कि श्रद्धा के अनुसार सभी कर्मों में भेद हो जाता है जैसे आहार (खान पान), यज्ञ, दान और तप आदि। आहार आदि सभी के विषय में इस प्रकार से है-

आहार-सात्विक

आयु, बुद्धि, बल, आरोग्य, सुख और प्रीति को बढ़ाने वाले एवं रस युक्त चिकने, स्थिर रहने वाले तथा स्वभाव से ही मन को प्रिय ऐसे आहार तो सात्विक पुरुष को प्रिय होते हैं।

आहार-राजसिक

कड़वे, खट्टे, लवण युक्त और अति गरम तथा तीक्षण, रूखे और दाह कारक एवं दुख, चिन्ता और रोगों को उत्पन्न करने वाले आहार राजस पुरुष को प्रिय होते हैं।

आहार-तामसिक

जो भोजन अधपका, रस रहित और दुर्गन्ध युक्त, बासी और उच्छिष्ट है तथा जो अपवित्र भी है वह भोजन तामस पुरुष को प्रिय होता है।

यज्ञ-सात्त्विक

भगवान कृष्ण कहते हैं, ''हे अर्जुन! जो यज्ञ शास्त्र विधि से नियत किया हुआ है तथा करना ही कर्तव्य है ऐसे मन को समाधान करके फल को न चाहने वाले पुरुषों द्वारा किया जाता है वह यज्ञ सात्त्विक है।

यज्ञ-राजस

हे अर्जुन! जो यज्ञ केवल दम्भाचरण के ही लिए अथवा फल को उद्देश्य रख कर किया जाता है उस यज्ञ को तू राजस जान।

यज्ञ-तामस

शास्त्र विधि से हीन और अन्नदान से रहित एवं बिना मन्त्रों के, बिना दक्षिणा के और बिना श्रद्धा के किए हुए यज्ञ को तामस यज्ञ कहते हैं।

शरीर संबंधी तप

देवता, ब्राह्मण, गुरु और ज्ञानी जनों का पूजन, एवं पवित्रता, सरलता, ब्रह्मचर्य और अहिंसा यह शरीर संबंधी तप कहा जाता है।

वाणी सम्बन्धी तप

जो उद्वेग को न करने वाला, प्रिय और हितकारक एवं यथार्थ भाषण है और जो पढ़ने का एवं परमेश्वर के नाम जपने का अभ्यास है वह निःसंदेह वाणी सम्बन्धी तप कहा जाता है।

मन संबन्धी तप

मन की प्रसन्नता, शांत भाव, भगवत् चिन्तन करने का स्वभाव, मन का निग्रह, अन्तःकरण की पवित्रता यह मन सम्बन्धी तप कहा जाता है।''

अब भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को तीन प्रकार की तपस्या शरीर से, मन से और वाणी से बतलाकर गुणों की दृष्टि से उन का ज्ञान कराते हैं।

सात्त्विक तप

फल को न चाहने वाले निष्कामी योगी पुरुषों द्वारा परम श्रद्धा से किये हुए उस (पूर्वोक्त) तीन प्रकार के तप को सात्त्विक कहते हैं।

राजस तप

और जो तप सत्कार भाव और पूजा के लिए अथवा केवल पाखण्ड से ही किया जाता है व अनिश्चित और क्षणिक फल वाला होता है वह तप राजस कहा गया है।

तामस तप

जो तप मूढ़ता पूर्वक हठ से मन, वाणी और शरीर की पीड़ा के सहित अथवा दूसरे को अनिष्ट करने के लिए किया जाता है वह तप तामस कहा गया है।

अब भगवान कृष्ण अर्जुन को गुणों की दृष्टि से दान के विषय में बतलाते हैं।

दान-सात्त्विक

भगवान कहते हैं, ''हे अर्जुन! दान देना ही कर्तव्य है ऐसे भाव से जो दान देश, काल और पात्र के प्राप्त होने पर प्रत्युपकार न करने वाले के लिये दिया जाता है वह दान सात्त्विक कहा गया है।''

दान-राजस

''जो दान क्लेश पूर्वक तथा प्रत्युपकार के प्रयोजन से अथवा उद्देश्य रखकर दिया जाता है वह दान राजस कहा गया है।''

दान-तामस

''जो दान बिना सत्कार किये अथवा तिरस्कार पूर्वक अयोग्य देश काल में कुपात्रों के लिए दिया जाता है वह दान तामस कहा गया है।''

उपसंहार

अर्जुन ने प्रश्न किया था कि शास्त्र विधि को न जान कर जो श्रद्धा से कर्म करते हैं उन का क्या फल होता है। श्री भगवान कृष्ण उस विषय में अपना मत प्रकट करते हैं कि शास्त्रोक्त कर्म विधि पूर्वक श्रद्धा से किये हुए ही उत्तम फल देते हैं। बिना श्रद्धा के कर्मों का अभीष्ट फल नहीं होगा। परन्तु कर्म शास्त्रोक्त विधि से ही करने चाहिएं। श्री भगवान गीता में इस प्रकार से भी बतलाते हैं-

'ऊँ तत् सत्' ऐसे यह तीन प्रकार का सच्चिदानन्दघन ब्रह्म का नाम कहा गया है। उसी से सृष्टि के आदि काल में 'ब्राह्मण' (ग्रंथ) और वेद तथा यज्ञादिक रचे गए हैं।

इस लिए वेद को कथन करने वाले श्रेष्ठ पुरुषों की शास्त्र विधि से नियत की हुई यज्ञ, दान और तप क्रियायें सदा 'ऊँ' ऐसे (इस नाम को) उच्चारण करके ही आरम्भ की जाती हैं। 'तत्' अर्थात् तत् नाम से कहे जाने वाले परमात्मा का ही यह सब कुछ है, इस भाव से फल को न चाह कर नाना प्रकार की यज्ञ तपरूप क्रियायें तथा दान रूप क्रियायें कल्याण की इच्छा वाले पुरुषों द्वारा की जाती हैं।

'सत्' यह परमात्मा का नाम सत्य भाव में प्रयोग किया जाता है तथा उत्तम कर्म में सत् शब्द प्रयोग किया जाता है।

भाव यह है कि भगवान का नाम लेकर शास्त्रोक्त कर्म श्रद्धापूर्वक भगवान के अर्पण करने का ही विधान है। इस लिए भगवान अंत में कहते हैं कि - "हे अर्जुन! बिना श्रद्धा के होमा हुआ हवन तथा दिया हुआ दान एवं तपा हुआ तप

और जो कुछ भी किया हुआ कर्म है वह 'असत्' कहा जाता है। इसलिए वह न तो इस लोक में लाभदायक है और न मरने के पीछे ही लाभदायक है।''

श्री प्रभु जी से श्रद्धा विषयिक उपदेश श्रवण कर कि दान, यज्ञ, तप श्रद्धा पूर्वक शास्त्र विधि अनुसार करना चाहिए। पण्डित ने श्री प्रभु जी से प्रश्न किया कि हे योगिवर! दान, यज्ञ, तप से क्या मुक्ति मिल सकती है ? मुक्ति तो सन्यास द्वारा ही मिलती है जब सब कर्मों का त्याग कर दिया जाए।

श्री प्रभु जी ने पण्डित को कहा, ''हे विप्रवर आपका यह संशय अगले पाठ में निवृत्त हो जायेगा।''

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'श्रद्धात्रय विभाग योग'

नाम - सतरहवां अध्याय

चौपाई

श्रद्धा जन का रूप बताय।
सात्विक उत्तम जन कहलाय ॥१.
राजसिक मध्यम होता भाई।
तामसिक जन निकृष्ट कहाई ॥२.

दोहा

श्रद्धा के अनुरूप ही,
होवे जन का रूप।
श्रद्धा ही पहचान है,
श्रद्धा रहती गूप॥

अठारहवां अध्याय

'मोक्ष सन्यास योग'

दो०- मोक्ष और सन्यास का, है संबन्ध महान।
सन्यासी इच्छा त्यागे, न कर्म त्यागे जान॥

गत अध्याय में पण्डित ने सन्यास और त्याग के विषय में श्री प्रभु जी से प्रश्न किया था। उसी विषय पर इस अध्याय के आरम्भ में अर्जुन भी भगवान से पूछते हैं हे महाबाहो! हे अन्तर्यामिन! हे वासुदेव! मैं सन्यास और त्याग के तत्त्व को पृथक पृथक जानना चाहता हूँ।

अर्जुन के प्रश्न का श्रीभगवान ने स्पष्ट उत्तर दिया जो कि भगवान कृष्ण का मुख्य संदेश श्रीमद्भगवद्गीता के अध्ययन से मिलता है। वह इस प्रकार से भगवान ने कहा -

त्याग

''हे अर्जुन! त्याग के विषय में तू मेरे निश्चय को सुन। हे पुरुषश्रेष्ठ! त्याग (सात्त्विक, राजस और तामस) तीन प्रकार का है। यज्ञ, दान, तप रूप कर्म त्यागने योग्य नहीं है किन्तु वह निःसंदेह करना कर्तव्य है क्योंकि यज्ञ, दान और तप (ये तीनों) बुद्धिमान मनुष्यों की बुद्धि को पवित्र करने वाले हैं।

हे पार्थ! यह यज्ञ, दान और तप रूप कर्म और भी संपूर्ण श्रेष्ठ कर्म आसक्ति को और फलों को त्याग कर अवश्य करने चाहिएं। ऐसा मेरा निश्चय किया हुआ उत्तम मत है।''

तामस त्याग

''और हे अर्जुन! नियत कर्म का त्याग करना योग्य नहीं है। इसलिए मोह से उसका त्याग करना तामस त्याग कहा जाता है।''

राजस त्याग

''जो कुछ कर्म है वह सब ही दुख रूप है ऐसे समझ कर शारीरिक क्लेश के भय से कर्मों का यदि त्याग कर दे तो वह पुरुष उस त्याग को जिसे राजस त्याग कहते हैं, करके भी त्याग के फल को प्राप्त नहीं होता है।''

सात्त्विक त्याग

''हे अर्जुन! करना कर्त्तव्य है ऐसे समझ कर ही जो शास्त्र विधि से नियत किया हुआ कर्त्तव्य कर्म आसक्ति को और फल को त्याग कर किया जाता है वह ही सात्त्विक त्याग माना गया है। अर्थात् कर्त्तव्य कर्मों को स्वरूप से न त्याग कर उन में जो आसक्ति और फल का त्यागना है वही सात्त्विक त्याग माना गया है।''

''हे अर्जुन! जो अकल्याण कारक कर्म से तो द्वेष नहीं करता है और कल्याण कारक कर्म में आसक्त नहीं होता है, वह शुद्ध सत्त्व गुण से युक्त हुआ पुरुष संशय रहित ज्ञानवान और त्यागी है।''

''देहधारी पुरुष के द्वारा संपूर्णतया सब कर्म त्यागे जाने शक्य नहीं हैं इस से जो पुरुष कर्मों के फल का त्यागी है वह ही त्यागी है ऐसे कहा जाता है।''

''सकामी पुरुषों के कर्म का ही अच्छा बुरा और मिला हुआ ऐसे तीन

प्रकार का फल मरने के पश्चात भी होता है और त्यागी पुरुष के कर्मों का फल किसी काल में भी नहीं होता। क्योंकि उनके द्वारा होने वाले कर्म वास्तव में कर्म नहीं हैं।''

कर्म के पांच हेतु

भगवान कृष्ण कर्तापन के विषय में बतलाते हैं, ''हे अर्जुन! संपूर्ण कर्मों की सिद्धि के लिए ये पांच हेतु सांख्य सिद्धान्त में कहे गये हैं। उन को तू मेरे से भली प्रकार जान।

''इस विषय में 'आधार' और 'कर्ता' तथा 'न्यारे न्यारे करण' और नाना प्रकार की न्यारी न्यारी 'चेष्टा' एवं वैसे ही पांचवां हेतु 'दैव' कहा गया है। मनुष्य मन, वाणी और शरीर से शास्त्र के अनुसार अथवा विपरीत भी जो कुछ कर्म आरंभ करता है उस के ये पांच ही कारण हैं। परन्तु ऐसा होने पर भी जो पुरुष आत्मा को कर्ता देखता हो वह यथार्थ नहीं देखता है।''

जिस पुरुष के अन्तःकरण में मैं कर्ता हूँ ऐसा भाव नहीं है तथा जिस की बुद्धि सांसारिक पदार्थों में और संपूर्ण कर्मों में लिपायमान नहीं होती, वह पुरुष इन सब लोकों को मार कर भी वास्तव में न तो मारता है और न पाप से बंधता है।''

कर्म के प्रेरक और कर्म के संग्रह

भगवान श्री कृष्ण अर्जुन को ऊपर दिये कर्म के पांच हेतु बतलाकर कर्म के 'प्रेरक' बतलाते हैं और कहते हैं, ''हे अर्जुन! जो कर्म पाँच हेतुओं से होता है उस कर्म को प्रेरणा देने वाली तीन 'प्रेरक' शक्तियां होती हैं। ''हे अर्जुन!

'ज्ञाता' 'ज्ञान' और 'ज्ञेय' ये तीन तो कर्म के प्रेरक हैं अर्थात् इन तीनों के संयोग से तो कर्म में प्रवृत्त होने की इच्छा उत्पन्न होती है।

और जिन तीन के संयोग से कर्म बनता है वे हैं - 'कर्ता', 'करण', 'क्रिया'। इन्हें कर्म के 'संग्रह' का नाम दिया है। अर्थात् इन तीनों के संयोग से कर्म बनता है।''

ज्ञान, कर्म, कर्ता

भगवान अर्जुन को कहते हैं कि 'ज्ञान', 'कर्म' और 'कर्ता' गुणों के भेद से सांख्य शास्त्र में तीन प्रकार से कहे गये हैं।

सात्त्विक ज्ञान

जिस ज्ञान से मनुष्य पृथक पृथक सब भूतों में एक अविनाशी परमात्म भाव को विभाग रहित समभाव से स्थित देखता है उस ज्ञान को सात्त्विक जान।

राजस ज्ञान

जिस ज्ञान के द्वारा मनुष्य सम्पूर्ण भूतों में भिन्न भिन्न प्रकार के अनेक भावों को न्यारा न्यारा करके जानता है उस ज्ञान को राजस जान।

तामस ज्ञान

जो ज्ञान एक कार्यरूप शरीर में ही संपूर्णता के सदृश आसक्त है तथा जो बिना युक्ति वाला तत्त्व अर्थ से रहित और तुच्छ है वह ज्ञान तामस कहा गया है।

सात्त्विक कर्म

जो कर्म शास्त्र विधि से नियत किया हुआ और कर्तापन के अहंकार से

रहित फल को न चाहने वाले पुरुष द्वारा बिना राग द्वेष के किया हुआ है वह कर्म सात्त्विक कहा जाता है।

राजस कर्म

जो कर्म बहुत परिश्रम से युक्त है तथा फल को चाहने वाले और अहंकार युक्त पुरुष द्वारा किया जाता है वह कर्म राजस कहा जाता है।

तामस कर्म

जो कर्म परिणाम, हानि, हिंसा और सामर्थ्य को न विचार कर केवल अज्ञान से आरंभ किया जाता है वह कर्म तामस कहा जाता है।

सात्त्विक कर्ता

आसक्ति से रहित और अहंकार के वचन न बोलने वाला धैर्य और उत्साह से युक्त एवं कार्य के सिद्धि होने और न होने में हर्ष शोक आदि विकारों से रहित है वह कर्ता सात्त्विक कहा जाता है।

राजस कर्ता

आसक्ति से युक्त कर्मों के फल को चाहने वाला और लोभी है तथा दूसरों को कष्ट देने के स्वभाव वाला अशुद्धाचारी और हर्ष शोक से लिपायमान है वह कर्ता राजस कहा जाता है।

तामस कर्ता

विक्षेप युक्त चित्त वाला शिक्षा से रहित घमण्डी, धूर्त और दूसरे की आजीविका

का नाश एवं शोक करने के स्वभाव वाला आलसी और दीर्घसूत्री है वह कर्ता तामस कहा जाता है।

बुद्धि, धृति, सुख

सात्त्विकी बुद्धि

प्रवृत्ति मार्ग और निर्विृत्ति मार्ग को तथा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को एवं भय और अभय को तथा बन्धन और मोक्ष को जो बुद्धि तत्व से जानती है वह बुद्धि सात्त्विकी है।

राजसी बुद्धि

जिस बुद्धि के द्वारा मनुष्य धर्म और अधर्म को तथा कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य को भी यथार्थ नहीं जानता है वह बुद्धि राजसी है।

तामसी बुद्धि

हे अर्जुन! जो तमोगुण से आवृत हुई बुद्धि अधर्म को धर्म ऐसा मानती है तथा और भी संपूर्ण अर्थों को विपरीत ही मानती है वह बुद्धि तामसी है।

सात्त्विकी धृति

हे पार्थ! ध्यान योग के द्वारा जिस अव्यभिचारिणी धारणा से मनुष्य मन प्राण और इन्द्रियों की क्रियाओं को धारण करता है वह धृति सात्त्विकी है।

राजसी धृति

हे अर्जुन! फल की इच्छा वाला मनुष्य अति आसक्ति से जिस धारणा के द्वारा धर्म अर्थ और कामों को धारण करता है वह धृति राजसी है।

तामसी धृति

हे पार्थ ! दुष्ट बुद्धि वाला मनुष्य जिस धारणा के द्वारा निद्रा भय चिन्ता और दु:ख को एवं उन्मत्तता को भी नहीं छोड़ता है वह धृति तामसी है।

सात्त्विक सुख

वह सुख जो प्रथम साधना के आरम्भ काल में यद्यपि विष के सदृश भासता है परन्तु परिणाम में अमृत के तुल्य है तथा आत्म विषयक बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न हुआ है। वह सुख सात्त्विक कहा जाता है।

राजस सुख

जो सुख विषय और इन्द्रियों के संयोग से होता है वह यद्यपि भोग काल में अमृत के सदृश भासता है परन्तु परिणाम में विष के सदृश है। वह सुख राजस कहा जाता है।

तामस सुख

जो सुख भोग काल में और परिणाम में भी आत्मा को मोहने वाला है, वह निद्रा आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ सुख तामस कहा जाता है।

श्री भगवान कृष्ण तीन गुणों (सत्व, रजस, तामस) की व्यापकता का

वर्णन करते हुए अर्जुन को कहते हैं, ''हे अर्जुन! पृथ्वी में या स्वर्ग में अथवा देवताओं में ऐसा कोई भी प्राणी नहीं है कि जो इन प्रकृति से उत्पन्न हुए तीनों गुणों से रहित हो।''

स्वाभाविक कर्म

आगे श्री भगवान अर्जुन को बतलाते हैं कि पूर्वकृत कर्मों के संस्काररूप स्वभाव से उत्पन्न हुए गुणों के अनुसार मनुष्य भी चार प्रकार में विभक्त हुआ करते हैं अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। प्रत्येक के अपने-अपने स्वभाव के अनुसार कर्म इस प्रकार से होते हैं। जैसे -

ब्राह्मण

अन्तः करण का निग्रह, इन्द्रियों का दमन, बाहर भीतर की शुद्धि, धर्म के लिए कष्ट सहन करना और क्षमाभाव एवं मन, इन्द्रियां और शरीर की सरलता, आस्तिक बुद्धि, शास्त्र विषयक ज्ञान, और परमात्म तत्त्व का अनुभव ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं।

क्षत्रिय

शूरवीरता, तेज, धैर्य, चतुरता और युद्ध में न भागने का स्वभाव एवं दान, स्वामीभाव ये सब क्षत्रिय के स्वाभाविक कर्म हैं।

वैश्य

खेती, गौपालन, क्रय विक्रय रूप सत्य व्यवहार। ये वैश्य के स्वाभाविक कर्म हैं।

शूद्र

सब वर्णों की सेवा करना यह शूद्र का स्वाभाविक कर्म है।

स्वाभाविक कर्मों द्वारा मोक्ष

भगवान कृष्ण के उपदेशानुसार सभी मनुष्यों को अपने स्वाभाविक कर्मों को दृढ़तापूर्वक करते रहना चाहिए। उसी में व्यक्ति का परम कल्याण है। वे कहते हैं, ''हे अर्जुन! जिस परमात्मा से सर्वभूतों की उत्पत्ति हुई है और जिस से यह सर्व जगत व्याप्त है उस परमेश्वर को अपने स्वाभाविक कर्म द्वारा पूज कर मनुष्य परम सिद्धि को प्राप्त होता है।''

और श्री भगवान का उपदेश है कि मनुष्य अपने स्वाभाविक कर्म को किसी रूप में भी घटिया न समझे। और उसे अपना धर्म समझकर पूर्ण निष्ठा के साथ करता रहे। वे कहते हैं, ''हे अर्जुन! अच्छी प्रकार आचरण किये हुए दूसरे के धर्म (कर्म) से गुण रहित भी अपना धर्म (कर्म) श्रेष्ठ है, क्यों कि स्वभाव से नियत किये हुए स्वकर्म को करता हुआ मनुष्य पाप को नहीं प्राप्त होता है। हे कुन्तीपुत्र! दोषयुक्त भी स्वाभाविक कर्म को नहीं त्यागना चाहिए क्योंकि धूएं से अग्नि के सदृश सब ही कर्म किसी न किसी दोष से आवृत हैं।''

उन के उपदेशानुसार अपना स्वाभाविक कर्म जैसा भी हो मनुष्य अनासक्त रूप में करता हुआ मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

सांख्य योग द्वारा मोक्ष

इस 'मोक्ष सन्यास' नाम के अध्याय में भगवान बतलाते हैं कि सन्यास (या

सांख्य) द्वारा भी मोक्ष की प्राप्ति होती है। उसका वर्णन इस प्रकार से गीता में है।

''हे अर्जुन! आसक्ति रहित बुद्धि वाला, स्पृहा रहित और जीते हुए अन्तःकरण वाला सांख्य योग के द्वारा भी परम नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त होता है।

इसलिए हे अर्जुन! वह नैष्कर्म्य सिद्धि को प्राप्त हुआ पुरुष जैसे ब्रह्म को प्राप्त होता है तथा जो ज्ञान की निष्ठा है उस को भी तू मेरे से संक्षेप से जान।

विशुद्ध बुद्धि से युक्त एकान्त और शुद्ध देश का सेवन करने वाला तथा मिताहारी, जीते हुए मन, वाणी, शरीर वाला और दृढ़ वैराग्य को भली प्रकार प्राप्त हुआ पुरुष निरन्तर ध्यान योग के परायण हुआ सात्त्विक धारणा से अन्तःकरण को वश करके तथा शब्दादिक विषयों को त्याग कर और राग द्वेषों को नष्ट करके अहंकार, बल, घमण्ड, काम, क्रोध और संग्रह को त्याग कर ममता रहित और शान्त अन्तः करण हुआ सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकीभाव होने के लिये योग्य होता है।

सच्चिदानन्दघन ब्रह्म में एकीभाव से स्थित हुआ प्रसन्न चित्त वाला पुरुष न तो किसी वस्तु के लिए शोक करता है और न किसी की आकाङ्क्षा ही करता है एवं सब भूतों में समभाव हुआ मेरी 'परा' भक्ति को प्राप्त होता है।

और उस परा भक्ति के द्वारा मेरे को तत्त्व से भली प्रकार जानता है कि मैं जो और जिस प्रभाव वाला हूँ तथा उस भक्ति से मेरे को तत्त्व से जान कर तत्काल ही मेरे में प्रवेश हो जाता है।

और मेरे परायण हुआ संपूर्ण कर्मों को सदा करता हुआ भी मेरी कृपा से सनातन अविनाशी परम पद को प्राप्त हो जाता है।''

उपसंहार

इस अन्तिम अध्याय में भगवान श्री कृष्ण ने कर्म योग और सांख्य योग की व्याख्या कर उन दोनों की एकता दिखलाई। दोनों का एक ही लक्ष्य है भगवान की परम भक्ति जिस द्वारा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

और अन्त में श्री भगवान कृष्ण अपना अभीष्ट संदेश 'कर्मयोग' अर्जुन को इन शब्दों में देते हैं, ''हे अर्जुन! तू सब कर्मों को मन से मेरे में अर्पण करके मेरे परायण हुआ 'बुद्धियोग' का अवलंबन कर के निरन्तर मेरे में चित्त वाला हो।

इस प्रकार तू मेरे में निरन्तर मन वाला हुआ मेरी कृपा से सब संकटों को तर जायेगा और यदि अहंकार के कारण मेरे वचनों को नहीं सुनेगा तो नष्ट हो जाएगा।

और जो तू अहंकार को अवलम्बन करके ऐसे मानता है कि मैं युद्ध नहीं करूंगा तो तेरा निश्चय मिथ्या है। क्योंकि क्षत्रियपन का स्वभाव तेरे को जबरदस्ती युद्ध में लगा देगा।

हे अर्जुन जिस कर्म को तू मोह से नहीं करना चाहता है उस को भी अपने स्वाभाविक कर्म से बंधा हुआ परवश होकर करेगा।''

अन्तिम ज्ञान

सर्व संसार के लिए भगवान इस ग्रंथ में जो ज्ञान देते हैं वह इस प्रकार से है-

''शरीर रूपी यन्त्र में आरूढ़ हुए संपूर्ण प्राणियों को ईश्वर अपनी माया से भ्रमाता हुआ सब भूत प्राणियों के हृदय में स्थित है, इसलिये जीव को सब

प्रकार से उस परमेश्वर की ही शरण में जाना चाहिए। उस परमात्मा की कृपा से प्राणी परम शांति को और सनातन परम पद को प्राप्त करता है।''

श्री भगवान कृष्ण अर्जुन को पुनः सचेत करते हुए कहते हैं, ''हे अर्जुन संपूर्ण गोपनीयों से भी अति गोपनीय मेरे परम रहस्य युक्त वचन को तू फिर सुन क्योंकि तू मेरा अतिशय प्रिय है। इस से यह परम हितकारक वचन मैं तेरे लिए कहूँगा।

हे अर्जुन! केवल मुझ में ही अचल मन वाला हो, मुझ को ही निरन्तर भजने वाला हो, मेरा ही पूजन करने वाला हो, मुझ को ही प्रणाम किया कर, ऐसा करने से मुझ को ही प्राप्त होगा। यह मैं तेरे लिए सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ क्योंकि तू मेरा अत्यंत प्रिय सखा है।

अतः हे अर्जुन! सर्वधर्मों को त्याग कर केवल एक मेरी शरण को प्राप्त कर। मैं तेरे को संपूर्ण पापों से मुक्त कर दूँगा। तू शोक मत कर।''

अन्त में भगवान अर्जुन से प्रश्न करते हैं, ''हे अर्जुन! क्या ये मेरे वचन तूने एकाग्र चित से श्रवण किये और तेरा अज्ञान से उत्पन्न हुआ मोह नष्ट हुआ?''

अर्जुन ने भगवान को उत्तर दिया, ''हे अच्युत! आपकी कृपा से मेरा मोह नष्ट हो गया है और मुझे स्मृति प्राप्त हुई है। संशय रहित हुआ स्थित हूँ और आपकी आज्ञा पालन करूँगा।''

ग्रंथ के अन्त में महर्षि व्यास का, जिन्होंने इस श्रीमद्भगवद्गीता को लिखा है, भविष्य वाणी के रूप में सत्य संदेश जगत को है-

"जहाँ योगेश्वर कृष्ण भगवान हैं और जहाँ गाण्डीव धनुषधारी अर्जुन हैं वहीं पर श्री, विजय, विभूति और अचल नीति है। ऐसा मेरा मत है।"

-इति-

श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र का 'मोक्ष सन्यास योग'
नाम - अठारहवां अध्याय

श्री प्रभु जी के मुखारविंद से संपूर्ण गीता को श्रवण कर पण्डित ने अपने को कृत कृत्य माना और श्री प्रभु जी को दण्डवत कर वह काशी को लौट गया।

दोहे

मोक्ष सन्यास योग जो,
उत्तम योग पहचान।
बहुर जन्म न होय गा,
सन्यासी का जान ॥(1)
इच्छा का जो त्याग कर,
कर्म त्यागे नाहीं।
यज्ञ, दान, तप सब कर्म,
करत सन्यासी जाहीं ॥(2)
यही "मोक्ष सन्यास" है,
कृष्ण करत उपदेश।
इस से आगे ज्ञान न,
बचा न कुछ भी शेष ॥(3)

विनय

दो०- आज संपूर्ण है भया, गीता का उपदेश।
दिव्य रामायण रूप में, प्रभु की दया विशेष॥ 1

राखा प्रभु के चरण जब, प्रभु का ही यह ज्ञान।
नभ से वाणी तब भयी, " 'सेवक' सेव प्रवान"॥ 2

नत मस्तक वह हो गया, सुन आकाशी बयन।
अश्रु सिंचित हो गये, इस 'सेवक' के नयन॥ 3

छत्तीस वर्ष तक दी प्रभु, लिपिकार को सेव।
धन्य धन्य इसे कीना, देवन के प्रभु देव॥ 4

एक विनय तव चरण में, 'सेवक' की भगवान।
"पढ़ें सुनें जो ग्रंथ यह, सब का हो कल्याण"॥ 5

ॐ तत्सदिति श्री सद्गुरु योगेश्वर स्वामी मुलखराज के शिष्य 'सेवक' चमन लाल कृत 'श्री योग महादिव्य रामायण' का ग्यारहवां खण्ड (काण्ड बारहवां) 'श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र' योग साधन आश्रम होश्यारपुर में संपूर्ण हुआ।

प्रभु कृपा से 'श्री योग महा दिव्य रामायण' का ग्यारहवां खण्ड 'श्रीमद्भगवद्गीता दिव्य योग शास्त्र' नाम का आज बृहस्पतिवार 6 माघ मास संवत 2062 तदानुसार 19 जनवरी 2006 को योग साधन आश्रम होश्यारपुर में संपूर्ण हुआ।

❖ योग साधन आश्रम के नियम ❖

(श्री योगेश्वर प्रभु राम लाल जी महाराज द्वारा रचित)

1. आश्रम में किसी प्रकार की फीस नहीं ली जाती।
2. पुरुषों को पुरुष और स्त्रियों को स्त्रियां साधन सिखलाती हैं।
3. आश्रम के विद्यार्थी तीन श्रेणियों में विभक्त किये जाते हैं : –
   (क) जो सर्वदा आश्रम में रहकर अपने साधन को करते हुए आश्रम की यथा योग्य परिचर्य्या और अन्य भाईयों की प्रेम पूर्वक सेवा करेंगे।
   (ख) जो साधक यथा अवकाश आश्रम में रहकर स्वयं साधन सीखकर अपने देश में जाकर दूसरों को भी अपने अनुभव से लाभ पहुंचाते हुए प्रचार करेंगे।
   (ग) जो आश्रम में आकर साधनों से लाभ उठाएंगे।
4. प्रत्येक साधक को अपने सब खर्च का प्रबन्ध आप करना होगा।
5. रोगी साधक को अपने रोग निवारणार्थ कम से कम एक मास रहने का प्रबन्ध करके आना चाहिये, किन्तु जो भगवद्भक्ति मानसिक शान्ति के लिये योग के अन्तरंग साधन करना चाहते हों उनको श्री गुरु जी के ही विचार पर सदा निर्भर रहना होगा।
6. प्रत्येक साधक को अपनी दिनचर्य्या तथा रात्रिचर्य्या (टाईम टेबल) श्री गुरु जी की आज्ञानुसार नियत करनी होगी।
7. योग चिकित्सा से चिकित्सित होने वाले साधक को अपने चिकित्सा काल के अन्दर किसी भी डाक्टर वैद्य या हकीम की दवाई खाना निषिद्ध है।
8. यदि कोई साधक अन्य साधकों के किसी साधन को देखकर बिना अनुमति स्वयं उन साधनों को करेगा तो उस से लाभ हानि का जिम्मेवार वह स्वयं होगा और आश्रम के आचार्य के अनुशासन का भी भागी होगा।
9. २० वर्ष से कम आयु वाले को उसके संरक्षकों की सम्मति से प्रविष्ट किया जायेगा।
10. स्त्रियों को संबन्धियों के साथ आना चाहिये या वृद्ध स्त्री को जो संरक्षक हो उसी के साथ आना चाहिये।
11. साधकों को जो भी कोई उपासना या साधन दिया जावे उसे नित्य नियम पूर्वक करना होगा और आचार्य जी की आज्ञा के बिना अन्य कोई मनमानी नूतन उपासना या धारणा नहीं करनी होगी।

✣✣✣✣